

आत्मधर्म कार्यालय
मोटा आकड़िया काठियावाड़

मान्यवर व्यवस्थापकजी,

दिगम्बर जैन मन्दिर

मन्दिरजी के लिये 'वस्तुविज्ञानसार' नामक आध्यात्मिक पुस्तक जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट की ओर से भेट भेजी जा रही है। इसकी स्वाध्याय के लिये अपने यहाँ के भाई-बहिनों को प्रेरित कीजिये। और यदि यह पुस्तक रुचे तो हमारे यहाँ से कुछ प्रतियाँ मगवाकर अन्य सज्जनों को भी दीजिये।

माय ही इस पुस्तक के अन्त में 'जिज्ञासुओं से' जो निवेदन छपा है, उसे पढ़कर, उसमें से जो भी प्रय आप चाहें, मगना लीजिये। 'समयसार प्रवचन' के कम से कम एक भाग के ५) भेजकर उसके, तथा ३) भेजकर 'आत्मधर्म' के ग्राहक अवश्य हो जाइये। आशा है, आपकी ओर से पत्रोत्तर अवश्य प्राप्त होगा।

जमनादास खाण्डी ।

भगवानश्रीबुद्धकुन्द-कहॉन जैनशास्त्रमाला

पुष्प-२५

वस्तुविज्ञानसार

★

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री कानजी स्वामी के
प्रवचन

★

अनुवादक

पंडित

प्रकाशक
श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़—काठियावाड़

1

हिंदी भाषातुबाद-प्रथमावृत्ति-प्रति ५०००
विमस मयत् २००५, वीर मयत्, २४७४

—

मुद्रक
जमनादास भास्करदास स्वामी
अनेकान्त मुद्रणालय—भोटा आन्ध्रप्रदेश
[काठियावाड़]

प्रवर्तमान पदार्थों में ऐसा मात्र भी परतन्त्रता नहीं है सब अपने अपने विरोधा से ही स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता से परिणमित होत रहते हैं।

ऐसा होन से जीव द्रव्य देहादि की क्रिया तो कर ही नहीं सकता वह मात्र अपने विराय को ही कर सकता है। सकल्प विकल्प रूप विराय दु खमार्ग ही विपरीत पुरुषार्थ है। अगत क स्वस्वर को न्यायमगत और निदत्त ज्ञानको और यह नियम करके कि—पर में अपना कोई कर्तव्य नहीं है निज द्रव्य सामान्य की अज्ञात रूप से परिणमित होकर उसमें लीन हो जानेरूप जो विरोध है वही मूल पदार्थ है, वही परम पुरुषार्थ है। अज्ञानियों का पर पदार्थ का परिवर्तन कर सकन में ही पुरुषार्थ भासित होता है। सकल्प विकल्पों की सहा में ही पुरुषार्थ प्रतीत होता है परन्तु जिसमें विश्व क सब भावों की नियतता का नियम निर्मित है ऐसी द्रव्य सामान्य की अज्ञात करके उसमें दुःख जाने का जो यथाय परम पुरुषार्थ है वह उसक ध्यान में ही नहीं आता।

और फिर जीवों ने भागमें में से उपरोक्त बातों की धारणा भी अनन्त बार करली है परन्तु सब भागमें के सारभूत स्वप्नय सामान्य का अर्थ निर्णय करके उसका दृष्टिरूप परिणमन नहीं किया। यदि उस रूप परिणमन किया होता तो सदा में परिश्रमण नहीं होता।

ऐसी वस्तुविज्ञान की अनेक परम हितकारक, रहस्यमय साररूप बातें इस पुस्तक में स्पष्टतया समझाई गई हैं इसलिये इस पुस्तक का नाम वस्तुविज्ञान धार रखा गया है। परम पूज्य अन्ध्यात्मयोगी श्री कान्ती स्वामी सानगड में मुमुक्षुओं क समक्ष सदा जो आध्यात्मिक प्रवचन करते हैं उनमें से वस्तु विज्ञान क सारभूत कुछ प्रवचन इस पुस्तक में प्रकाशित किये गये हैं। जो मुमुक्षु इनमें कथित विज्ञानसार का अभ्यास करके चिंतन करके निर्वाण सुखिरूप प्रयाग से सिद्ध करके निर्णीत करके चैतन्य सामान्य की दृष्टिरूप परिणमित होकर उसमें लीन हो के अस्त्य उपाय परमानन्द तथा को प्राप्त हों।

जो जीव शारीरिक क्रियाकांड में या बाह्य प्रवृत्तियों में धर्म का भ्रम भी मानते हों, जो वैराग्य भक्ति आदि शुभभावों में धर्म मानते हों, जो शुभभाव में धर्म को किंचित्मात्र कारण मानते हों, और जो जीव निगम क विना ही शास्त्रों की मात्र धारणा से किंचित् धर्म मानते हों व सभी प्रकार के जीव इस पुस्तक में कहे गये परम प्रयोजनमूल भावों को जिण्य सुभाव से गतिपूर्वक गम्भीरतया विचार करें और अनन्त काल से घटी मानवाजी मूलभूत मूल कितनी मुद्म हं, तथा वह किम प्रकार के अपूर्व परम सम्यक् पुण्याय को चाहती है, यह समझकर निज कल्याण करें । इसीमें मानव जीवन की सफलता है ।

रामजी माणिकचंद दोशा

अध्यक्ष,

श्री जेन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ (काठियावाड़)

मगनिर शुक्ला

पूर्णिमा

वीर सवत् २४७४

विषयसूची

संक्रमांक	विषय	पृष्ठ
१	अनंत गुरुपार्ष	१ से ३३
२	धामस्वरूप का यथार्थ समझ सुलभ है	३४ से ३६
३	अनादान निमित्त की स्वन व्रता	३७ से ७२
४	क्रिया	७३ से ७८
५	व्यवहारात् के-पक्ष के गूह्य आशयरा : स्वरूप और उसे दूर करने का उपाय	७९ से ९२
६	श्रुतपचमी (ज्ञान की स्वाधीनता और असा म पूर्य की प्रयत्नता)	९३ से १०५
७	दृश्यदृष्टि	१०६ से १०७

वस्तुविज्ञानसार

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री
कानजी स्वामी के प्रवचन

अनन्त पुरुषार्थ

‘ वस्तु की पर्याय क्रमबद्ध ही होती है तथापि पुनर्पार्थ के बिना शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती ’ मुख्यतया इसी सिद्धान्त पर यह प्रवचन है । इस प्रवचन में निम्न लिखित विषयों के स्वरूपना स्पष्टीकरण होजाता है —

१- पुरुषार्थ, २- सम्यग्दृष्टि की धर्मभावना, ३- सर्वज्ञ की वयार्थ श्रद्धा, ४- द्रव्य दृष्टि, ५- जह और चेतन पदार्थों की क्रमबद्ध पर्याय, ६- उपादान निमित्त, ७- द्रव्य गुण पर्याय, ८- सम्यग्दर्शन, ९- कर्तृत्व और जावृत्व, १०- साधक दशा, ११- कर्म में उदीरणा इत्यादि के प्रकार १२- मुक्ति की निमन्दह प्रतिध्वनि, १३- सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि, १४- अनेकान्त और एका-न्त, १५- पांच ममत्राय, १६- अस्ति-नास्ति, १७- निमित्त-नैमित्तिक संबन्ध, १८- निश्चय व्यवहार, १९- आत्मज्ञ और सर्वज्ञ २०- निमित्त की उपस्थिति हान पर भी निमित्त के बिना कार्य होता है ।

। ऐसे अनेक पहलुओं से-प्रकारान्तर से बारबार स्वतंत्र पुरुषार्थ का सिद्ध किया है, और इस प्रकार पुरुषार्थस्वभावी आत्मा की पहचान कराई है । जिज्ञासुचन इस प्रवचन के रहस्य को ममभाव आत्मा के स्वतंत्र सत्य पुरुषार्थ की पहचान कर के उस ओर उन्मुख हों, यही — सम्पादक ।

स्वामि कार्तिकेय भगवान् तीन गायत्रियों में यह बनाया है कि सम्पत्ति जीव वस्तुस्वरूप का जैसा चिन्तन करत है तथा त्रिगु प्रकाश पुष्पार्थ की भावना करते हैं। यह त्रिगु ज्ञानव्य है इस लिये यहाँ उक्त वचन दिया जा रहा है। वे मूल गायत्रियों इस प्रकार हैं—

ज जन्म जन्मि दमे जेण विहाणेण जन्मि वात्तन्मि ।

णार्दं जिवेण त्रियं जन्म वा महवभरण वा ॥ ३२१ ॥

त सम्म तस्मि दसे तेण विहाणेण तस्मि वात्तन्मि ।

को सक्कं धाउंउ दुवा वा मह जिण्णिदोसा ॥ ३२० ॥

अर्थ—त्रिगु जीविका त्रिगु देगमें त्रिगु काल में त्रिगु त्रिगु 'स जन्म-मरण सुख-दुःख तथा रोग और दादित्य इत्यादि जैसे सुख दुःख जाने है उसी प्रकार वे सब नियम स होंग। सर्वशेदेव में त्रिगु प्रकार जाना है उसी प्रकार उस जीव के उसी वर में उसी काल में और उसी त्रिगु स नियम पूर्वक सब होता है। उसके निवारण करन के त्रिगु इन्द्र या त्रिनन्द तीर्थकर देव कोई भी समर्थ नहीं है।

भाषार्थ—सर्वशेदेव समस्त द्रव्य क्षेत्र, काल भाष की व्यवस्थामें का जानस है। सर्वश के ज्ञानमें जो कुछ प्रतीभामित हुआ है वह सब निरवय में होता है उसमें हीनाधिक कुछ भी नहीं जाना। इस प्रकार सम्पत्ति विचार करता है। (स्वामि कार्तिकेयानुशेखा शृ १०५)

इस गायत्र में यह बनाया है कि सम्पत्ति की धमालेखा बँधी जाती है। सम्पत्ति जीव वस्तु के स्वरूप का त्रिगु प्रकार चिन्तन करता है यह बात यहाँ बनाई है। सम्पत्ति की यह भावना दुःख में धीरग विज्ञान का त्रिगु प्रकाश मूल्य आराधन केन क-त्रिगु नहीं है, किन्तु त्रिनन्द देव के द्वारा देखा गया वस्तुस्वरूप त्रिगु प्रकार है तथा प्रत्येक स्वयं चिन्तन करता है। वस्तुस्वरूप जैसा ही है। यह कार्य इत्यादि नग्न है, यह धम भी जान है। 'त्रिगु काल में जो हान बाधा व्यवस्था सुख भगवान न करती है उस काल में यही व्यवस्था होती है, दूसरी नहीं जान।' इस में एकान्तवाद या

नियतवाद नहीं है, किन्तु सच्चा अनन्तवाद् और सर्वज्ञता की भावना तथा 'ज्ञान का अनन्त पुरुषार्थ निहित है'।

आत्मा सामान्य-विशेषस्वरूप वस्तु है, अनादि अनन्त ज्ञानस्वरूप है। उस सामान्य और उस ज्ञान में मे समय समय पर जो पर्याय होती है वह विशेष है। सामान्य स्वयं ध्रुव रहकर विशेष रूप में प्रगमन करता है उस विशेष पर्याय में यदि स्वरूप की रुचि करे तो समय समय पर विशेष में शुद्धता हाता है, और यदि उस विशेष पर्याय में ऐसी विपरीत रुचि करे कि 'जा रागादि व दहाति व दहने हू' तो विराय में अशुद्धता हाती है। और यदि स्वरूप का रुचि करे तो शुद्ध पर्याय क्रमवद्ध प्रगट होती है और यदि विकार का—पर की रुचि हाती है तो अशुद्ध पर्याय क्रमवद्ध प्रगट होती है। चेतन्य की क्रमवद्धपर्याय में अन्तर नहीं पत्ता, किन्तु क्रमवद्ध का ऐसा नियम है कि जिस आर की रुचि करता है उस आर का क्रमवद्ध दशा हाती है। जिसे क्रमवद्ध पर्याय की श्रद्धा हाती है उस द्रव्य का रुचि हाती है और जिस द्रव्य की रुचि हाती है उसकी क्रमवद्ध पर्याय शुद्ध ही होना है अर्थात् सर्वज्ञ भगवान् क ज्ञान व अनुगार क्रमवद्ध पर्याय ही हाती है। उस में कोई अन्तर नहीं पत्ता। इतना निश्चय करने में तो द्रव्य की और का अनन्त पुरुषार्थ आजाता है। यहाँ पर्याय का क्रम नहीं बदलना है किन्तु अपनी ओर रुचि करनी है।

प्रश्न— जगत क पदार्थों की अवस्था क्रमवद्ध हाता है। जइ अथवा चेतन द्रव्यादि में एक व बाद दूसरी क्रमवद्ध अवस्था जैसी थी सर्वज्ञ वचन करती है उसी क अनुगार अनादि अनन्त समयवद्ध हाती है तब फिर इसमें पुरुषार्थ करने की बातही कहाँ रहती ?

उत्तर— मात्र आत्मा की ओर का ही पुरुषार्थ किया जाता है। सब ही क्रमवद्ध पर्याय की श्रद्धा हाती है। जिसने अपने आत्मा में क्रमवद्ध पर्याय का निश्चय किया कि महा ! जइ और चेतन्य सभी की अवस्था क्रमवद्ध रूप हुआ करता है, मैं परमें क्या कर सकता हूँ ? मेरा ऐसा स्वरूप है

कि मात्र जैसा होता है वही बसा ही जानता है। ऐसे निर्णय में उसे पर की अवस्था में अच्छा बुरा मानना नहीं रह जाता किन्तु ज्ञानरूप ही रहता है, अर्थात् विपरीत मान्यता और अनन्तानुसंधी रूपाय का नाश हो जाता है। अनन्त पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा निश्चाल्य भाव दूर हो कर अपन ज्ञान स्वभावकी अनन्त हृता हो जाती है और अपनी ओर का ऐसा अनन्त पुरोधे कमबद्ध पर्याय की धृता में आजाता है।

समस्त द्रव्यों की अवस्था कमबद्ध होती है। मैं उस जानता हूँ किन्तु किंगी का कुछ नहीं करता, एसी मान्यता के द्वारा निश्चाल्य का नाश करके पर से हटकर जीव अपनी ओर मुहता है। सर्वज्ञत्व के ज्ञान में जो प्रतिभाषित हुआ है उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता समस्त पदार्थों की समय समय पर जो अवस्था कमबद्ध होती है वही होती है। ऐसे निर्णय में सम्यग्दर्शन भी आजाता है। इस में पुरोधे किंग प्रकार भाषा से बनता है।

१-पर की अवस्था उसके समानुसार होती ही रहती है मैं पर का कुछ नहीं करता यह निश्चय किया कि सभी पर द्रव्यों का अविभाज्य दूर होता है।

२-विपरीत मान्यता के कारण परकी अवस्था में अच्छा बुरा मानकर जो अनन्तानुसंधी रागद्वेष करता या वह दूर हो गया। इस प्रकार कमबद्ध पर्याय की धृता करनेपर पर द्रव्य के लक्ष से हटकर स्वयं राग-द्वेष रहित अपन ज्ञान स्वभाव में भाग्यी अर्थात् अपन हित के द्विय परमुखापक्षा रह गई और ज्ञान अपनी ओर प्रवृत्त हो गया। अपन द्रव्य में भी एक के बाद दूसरी अवस्था कमबद्ध होती है। मैं तो सीना काग के कमबद्ध अवस्थाओं का विवरूप द्रव्य हूँ वस्तु तो ज्ञान ही है, एक अवस्था किंगनी वस्तु नहीं है। अवस्था में जो राग द्वेष होता है वह पर वस्तु के कारण नहीं किन्तु वर्तमान अवस्था का दुःखता से होता है उस दुःखता का भी खोजना नहीं रहा। किन्तु पुरोधे से विपुल ज्ञान स्वल्प में ही बनना रहा। उद्ये स्वल्प के लक्ष से पुरोधे की दुःखता अपन काल में टूट जागी।

कमबद्ध पर्याय द्रव्य में से भ्राती है पर पदार्थ में से नहीं, तथा एक पर्याय में से दूसरी पर्याय प्रगट नहीं होती इसलिए अपनी पर्याय के लिए परद्रव्य की ओर ग्रंथया पर्याय को देखना नहीं रहा किन्तु मात्र माता स्वरूप का ही देखना रहा। जिसकी एनी दशा होजाती है, समझना चाहिये कि उसने सर्वज्ञ क ज्ञान के अनुसार कमबद्ध पर्याय का निष्पत्ति कर लिया है।

प्रश्न—सर्वज्ञ भगवान ने देखा हो तभी तो आत्मा की रचि होती है न ?

उत्तर—यह किसने निश्चय किया कि सर्वज्ञ भगवान सब कुछ जानते हैं ? किन्तु सर्वज्ञ भगवान की ज्ञान शक्ति का अपनी पर्याय में निश्चित किया है उसकी पर्याय ससार से और राग से हटकर अपने स्वभाव की ओर लग गई है तभी वह सर्वज्ञ का निर्णय करता है। जिसकी पर्याय ज्ञान स्वभाव का ओर हागई है उसे आत्मा की ही रचि हानी है। जिसने यह यथार्थनया निश्चय किया कि 'महो ! कबली भगवान तीन काल और तीन लोभ के ज्ञाता है, वे अपने ज्ञान से सब कुछ जानते हैं किन्तु किसी का कुछ नहीं करते' उसने अपने आत्मा का ज्ञान स्वभाव का रूप में मान लिया और उसी तीन काल और तीन लोभ के समस्त पदार्थों की कर्मव्य बुद्धि दूर हो गई है अर्थात् अभिप्राय की अपेक्षा में वह सर्वज्ञ हो गया है। एसा स्वभाव का अनन्त प्रसाद कमबद्ध पर्याय की श्रद्धा में आता है। कमबद्ध पर्याय का श्रद्धा निदत्ताद नहीं है, किन्तु सम्यक् पुर्यार्थ पाद है।

प्रस्तुत द्रव्यों की एक क बाद दूसरी जो आस्था होती है उसका कर्ता स्वयं वही द्रव्य ज्ञाता है, किन्तु मे उसका कर्ता नहीं है और न मेरी अवस्था का कोई अन्य कर्ता है। किसी निमित्त कारण से रागरूप नहीं होते। इस प्रकार निमित्त और रागरूप को जानने वाली मात्र ज्ञान की अवस्था रह जाती है वह अवस्था ज्ञान स्वरूप को ही जानती है, राग का ज्ञानी है, और समा पर का भी जानता है मात्र जानना ही ज्ञान का

स्वरूप है। जो राग होता है वह ज्ञान का ज्ञेय है, किन्तु राग जो इन का स्वरूप नहीं है—जहाँ यद्यपि ज्ञान का अन्ततः पुण्यात् समर्पित्य गतम् । यह समझन के नियम-ही आवश्यक नव न यहाँ पर या मायाय उक्त बन्धुस्वरूप बनना है। सम्पूर्णज्ञान का अर्थ केवलज्ञान नहीं हुआ स्वयं पूर्व अवन कवच्छान का भावना का कर्ता हुआ बन्धुस्वरूप का विचार करता है। यद्यपि ज्ञान पर बन्धुस्वरूप कैसा हात हागा इत्यादि विचार करता है।

आत्म की अवस्था कमवद्ध ज्ञाना है। जब आत्मा का जो अवस्था होता है तब उस अवस्था के लिये अनुकूल निमित्त-पर पर बन्धु स्वयं उपस्थित होती ही है। आत्मा का कमवद्ध पथाय की या याम्यता जाना हा उक्त अनुसार यदि निमित्त न माय तो वह पथाय नहीं अथवा आपसी मा बल नहीं है। यह प्रथ ही अज्ञान से प्राप्त है कि यदि निमित्त न ज्ञान, तो यह कम हागा उवादानास्वरूप का दर्जा बाव के यह प्रथ ही नहीं उक्त सकता। बन्धु में अथा कम से जय अवस्था होती है तब निमित्त जाना ही है तथा नियम है।

धूप परमाणुमा का ही प्रकाशमानदशा है और हाया भा परमाणुओं का वाली दशा है। परमाणुओं में त्रिव समय कानी अवस्था होती है उगी समय कानी अवस्था उक्त द्वारा लये जाता है और उन समय यामने दृग्गी बन्धु उपस्थित होती ही है। परमाणु का ज्ञाना दशा व कम का बदलन के लिये कोई समय नहीं है। धूप में बीच में जय रगन पर नीन जा परमाणु पडती है वह हाथ के कारण नहीं जाता किन्तु यहाँ के परमाणुमा का ही उस समय कमवद्ध अवस्था कानी होती है। अमुक परमाणुओं में दोहर का नीन बने वाला अवस्था जाना है जमा सवगत न दशा है और यदि उस समय ज्ञान न माय तो क्या उन परमाणुमा की रक्षण ज्ञान कारी दशा अथक चकारा ? नहीं जगा बनता हा नहीं। परमाणुमा से ठीक रक्षण कानी अवस्था जानी हा, तो ठीक उगी समय हाथ इत्यादि लिखित

स्वयं उपस्थित होते ही है। सरगदेव ने अपने ज्ञान में यह देखा है कि ३
 यज्ञ क्रमुक परमाणुमा की काली भवस्या होनी है, और यदि निमित्त का
 अभाव होने से अथवा निमित्त के विलम्ब से ज्ञान के कारण वह भवस्या
 विलम्ब से है तो मवज्ञ का ज्ञान गलत धरेगा, किन्तु यह असम्भव है।
 जिस समय वस्तु की जो क्रमबद्ध भवस्या होनी होती है, उस समय निमित्त
 उपस्थित न हो यह हा ही नहीं सकता। निमित्त होता तो है किन्तु वह कुछ
 करता नहीं है।

यहाँ पुद्गल का उपादान लिया गया है। इस प्रकार अब जीव का
 उपादान देकर समझाते हैं। किसी जीव के केवलज्ञान प्रगट होना है और
 और मैं वज्ररूपभनाराचनहनन न हा तो केवलज्ञान रुक जायेगा एसी मान्यता
 नित्यत्र समस्य एव पराधीन दृष्टि वास्तु का है। जीव केवलज्ञान प्राप्त करने
 की तैयारी में है और शरीर में वज्ररूपभनाराचनहनन न हा एसा कदापि नहीं
 हो सकता। जहाँ उपादान स्वयं सनद्ध हो वहाँ निमित्त स्वयं उपस्थित होना ही है।
 जिस समय उपादान काय रूप में परिणत होता है उसी समय दूसरी वस्तु
 निमित्त रूप उपस्थित होती है। निमित्त बाद में आता हो सो जान ली है।
 जिस समय उपादान का काय होता है उसी समय निमित्त की उपस्थिति भी
 होती है एसा होने पर भी निमित्त—उपादान के काय में किसी भी प्रकार
 की सहायता, असर, प्रभाव अथवा परिवर्तन नहीं करता। यह नहीं हो सकता
 कि निमित्त न हा। और निमित्त से काय हा एसा भी नहीं हो सकता।
 चतुस्र अथवा जड द्रव्य में उसकी अर्थात् जो क्रमबद्ध भवस्या लय होनी होता
 है सब अनुज्ञान निमित्त उपस्थित होते हैं। एसा जा स्वाधीन दृष्टि का
 विषय है उसे सम्यग्दृष्टि ही जानता है। मिथ्यादृष्टियों को वस्तु की स्वतंत्रता
 की प्रतीति नहीं होती, इसलिए उनकी दृष्टि निमित्त पर जानी है।

भक्षानी को वस्तुस्वरूप का यथावत ज्ञान नहीं है, इसलिये वस्तु की
 क्रमबद्ध प्रयाय में संका करता है कि यह एसा कैसे हो गया? उसे मवज्ञा के
 ज्ञान की और वस्तु की स्वतंत्रता की प्रतीति नहीं है। शारीर को वस्तुस्वरूप

में सदा नहीं होती। वह जानता है कि जिस काल में जिस वस्तु की उपयोग होती है वह उसकी कमबद्ध अवस्था है, मैं तो मात्र जानने वाला हूँ। इस प्रकार ज्ञानी का मनने हानुत्व स्वभाव की प्रतीति होती है। इसी प्रकार सदा भगवान् के द्वारा जाने गये वस्तुस्वरूप का वितरण करके वह अपने ज्ञान की भावना को बड़ाता है कि जिस समय जो जैसा होता है उसका मैं वैसा शायद ही हूँ। मनने शायक स्वरूप की भावना करते करते मेरा केवलज्ञान प्रगट हो जायगा।

ऐसी भावना बचली भगवान् के नहीं होती किन्तु जिसे अभी मूल रागद्वेष होता है उसे चौथे पाचों और छठे गुणध्यान मात्र ही की धन भावना का यह विचार है। इसमें यथाय वस्तुस्वरूप की भावना है। यह कोई भिन्नता कल्पना या दुःख के कारणानु के लिए नहीं है। सम्यग्-दृष्टि जिसे भी सयोग-विचार के अभाव में नहीं मानते किन्तु ज्ञान की प्रकृति दशा के कारण अपनी दुर्बलता से मूल रागद्वेष होता है—उस समय सपूर्ण ज्ञान दशा विद्य प्रकाश की होती है इस का वे इस तरह विवरण करते हैं।

जिस काल मैं जिस वस्तु की जो अवस्था सदा देव व ज्ञान में प्राप्त हुई है उसी प्रकार कमबद्ध अवस्था होगी। भगवान् तीर्थकरदेव भी उसे बखला में समथ नहीं है। देखिये इसमें सम्यग्-दृष्टि की भावना का निराशा का अभाव बल है। 'भगवान् भी उसे बदला में समथ नहीं है' यह कहने में पापत्र में अपने ज्ञान की निराशा ही है। सदादेव मात्र होता है किन्तु वे विधि भी तरह का परिचय करने में समथ नहीं है तब फिर मैं तो कर ही क्या सकता हूँ? मैं भी मात्र मात्र ही हूँ। इस प्रकार उसे अपने ज्ञान की पूर्णता की भावना का बल है।

जिस क्षेत्र में जिस शरीर के जीवन या मरण गुण या दुःख का सयोग-विचार नियम विधि से होता है उसमें किंचित् मात्र भी अंतर नहीं आ सकता। मत्त का कान्ता पानी में डबना मत्त में पटना इत्यादि

को सयोग होना है उसे बदलन में कोई भी तीनकात्र और तीनलोफ में समय नहीं है। स्मरण रहे कि इसमें महानतम विद्वान लिटिन है जो कि मात्र पुरपाप को मिद्ध करता है। इयर्म स्वामि कार्तिकेय आचाय न बारह भावनाओं का स्वरूप वर्णित किया है। वे महा सन्त-मुनि थे, वे दा हजार वर्ष पूरा हो गये हैं। वस्तुस्वरूप को रचि में रगदर इम गण्य में भावनाओं का स्वरूप का घणन किया गया है। यह शास्त्र मनानन जैन परम्परा में बहुत प्राचीन माना जाता है। स्वामि कार्तिकेय व मय्यन्ध म नीमन राचन्द्र ने भी कहा है कि- नमस्कार हो उन स्वामि कार्तिकेय का।' इन महा सन्त-मुनि के कथन में बहुत गहरा रहस्य भरा हुआ है।

जो जिस जीवके' अर्थात् सभी जीवों के लिये यही नियम है कि जिस जीव का जिस काल में जीवन मरण इत्यादि का कोई भी मयाग मुक्त दुःख का निमित्त प्राण वाता है उसमें परिवर्तन कराने के लिये वेदोद्ग नरोद्ग अथवा चिन्त्र इत्यादि कोई भी समय नहीं है। यह सम्य कृष्टि जीव का अक्षर्य ज्ञान का पूर्णता की भावना का विचार है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है उस अज्ञान में दिया जाता है। किन्तु किसी सयोग के भय से भाग लेने के लिये यह विचार नहीं है। एक पयाय में तीन काल और तीनकात्र के पदार्थों का ज्ञान इस प्रकार प्राप्त हो जाये सम्य कृष्टि जीव इमका विचार करना है।

यहां सुम दुःख के मयोग की बात की गई है। सयोग के समयभीतर स्वयं को शुभ या, अशुभ भाव होता है वह आत्मा के बंधन का कार्य है। पुण्याने की दुर्बलता से राग-द्वेष होता है वहाँ मय्यन्त्रि अथवा पर्याय की हीनता को स्व-सत्त से जाना है वह यह नहीं मानता कि सयोग के कारण से निप हो रागद्वेष होता है किन्तु वह यह मानता है कि जैसा सर्वज्ञदेव ने देखा है वसा ही सयोग वियोग प्रकृत होता है। मिथ्या टि जीव यह मानता है कि पर मयाग के कारण से निप का रागद्वेष होता है इन लिए वह मयाग को बदलना चाहता है, उसे वीतराग सामन के प्रति भद्रा

नहीं है और उसे सबकुछ के ज्ञान की भाँति नहीं दे सकता, जो कुछ ज्ञान
 है वह मन समस्तज्ञ के ज्ञान के अनुसर होता है फिर भी यह सत्य है
 है कि ऐसा क्या कर दुःख ? यदि जगत् की भ्रष्टता हो तो उसे यह
 विषय करना चाहिए कि जो कुछ सबकुछ में देखा है उसे ही के अनुसार मन
 कुछ ज्ञान है और ऐसा ज्ञान यह मान्यता दूर हो जाती है कि सबकुछ
 के कारण प्रपन्न में गतद्वेष होता है। और यह मान्यता भी दूर हो जाती
 है कि मैं सबकुछ के बदल सकता हूँ। जो इस मन्वन्त में होता था भी
 मान्यता मानता है, समस्तज्ञ चाहे कि उसे वीतराग शान्त के प्रति था।
 भी भ्रष्ट नहीं है।

जिस जीव को चित्त निमित्त के द्वारा जो ज्ञान-जन्तु मिलता हुआ है
 उन जीव का उन्नी निमित्त के द्वारा जो ज्ञान-वश विज्ञेय उसमें सब
 मन्य मात्र भ्रष्टा एक परमाणु मात्र का परिवर्तन करने के लिए कोई
 समर्थ नहीं है। जीवन मरण मृत्यु और वृद्धि क्षय आदि जो सब क्रिया
 होने लगती हैं वेना ही ज्ञान उभर आता प्रथम भी मानवानी रचना पर भी
 किञ्चित् मात्र परिवर्तन नहीं हो सकता उसे इन्द्र ने ही प्रथम निन्द्य
 यदि कोई भी बदलन में समर्थ नहीं है। इसमें नियत-ज्ञ नहीं है किन्तु
 मात्र शायद-ज्ञ का पुनरावेग ही है।

जो सबकुछ भगवान् न देता है वेना ही होता है इसमें स्थिति
 मान भी परिवर्तन नहीं होता। एही सब प्रतीति का निन्द्यवाद नहीं कहते
 किन्तु यह तो सम्यक्दृष्टि धर्मात्मा का पुनरावेग है। सम्यक्दृष्टि के बिना
 यह बात नहीं समझ। पर जो कुछ नहीं देखना है किन निमित्त में ही देखना
 है। चित्त की दृष्टि मात्र पर पदार्थ पर ही है उभर आता सब ज्ञान
 है कि यह तो निन्द्यवाद है किन्तु यदि सम्यक्दृष्टि ही कारण से देखे तो
 इस में मात्र स्वामीन तत्त्वदृष्टि ही पुनरावेग ही देना हुआ है, वस्तु का परि-
 यमन सारा के शरीर के अनुसर समस्तज्ञ ज्ञान है जो ज्ञान निन्द्य वि-
 निन्द्य धर्म पर श्रेष्ठों के ज्ञान ही ज्ञान है जो इन्द्रिय उभर-
 व-

द्रव्य के ही बखाना होतो है और उसी में सम्यक्त्व पुरुषार्थ आ जाता है । इस पुरुषार्थ में मोक्ष के पाँचों समवाय समाविष्ट हो जाते हैं । इस क्रम बढ़ते पर्याय की श्रद्धा के भाव सेना भगवान के ज्ञान का अवलंबन करने पाठ है यह भाव तीनकाल और तीनशोक में बदलने वाले नहीं हैं । यदि सर्वज्ञ का केवलज्ञान गमने हो जाय तो यह भाव बढ़े, जो कि सर्वथा अशक्य है । जगत्, जगत् ही है यदि जगत् के जीवों के यह भाव नहीं है तो इस से क्या ? जो दस्त-स्वल्प सर्वज्ञत्व ने देगा है वह कभी नहीं बदले सकता । ऐसा सर्वज्ञत्व ने देखा है बसा ही होता है, इसमें जो कथा करना है वह मिथ्या है । निमित्त और समाप्त में ही परिवर्तन कर सकता है ऐसा मानने वाला सर्वज्ञ के ज्ञान में गवा करता है, और इसलिये वह प्रगट रूप निश्चायि अज्ञानी भूट है ।

... महा ! इस एक सत्य को समझ लेने पर जात के समस्त द्रव्यों के प्रति भिन्ना उदात्त भाव हो जाता है । चाहे कम गान का भाव कर या अधिक गाने का भाव करे किन्तु जिनके और जो परमाणु भावा हैं उतने और वे ही परमाणु भावों, उनमें से एक भी परमाणु का भ्रान्त में कोई जीव समझ नहीं है । यह ऐसा जानकर गौरव का और पर का कर्तृत्व छूटकर ज्ञान स्वभाव की प्रतीति होनी चाहिये । इसे मानने में अनन्त वीर्य अपनी ओर कार्य करत है । पर का कर्तृत्व अन्तरंग से आता हो, पर में मुख बुद्धि हा, और कह कि जो होना है सो होगा यह तो शुद्धता है यह बात ऐसी नहीं है । जब अनन्त पर द्रव्य से प्रयत्न होकर जो मात्र स्वाभाव में सतिप बनिता है तब यह बात यथार्थ घटती है, इसकी स्वाकृति में तो सभी परपदावी से छूटकर ज्ञान, ज्ञान में ही लगता है, अर्थात् मात्र वीतराग भाव का पुरुषार्थ प्रगट हुआ है । नरन्द्र, देवन्द्र अथवा जितन्द्र तीनजान और तीन लोक में एक परमाणु का भी बदलने में समर्थ नहीं है । जिसके ऐसी प्रतीति है वह ज्ञान की ओर उमुख हुआ है और उसे सम्यग्गमन प्राप्त है, वह कमरा ज्ञान की दृष्टि के चलने से राग का जाग करके अल्पकाल

में ही कवचदान का प्राप्त कर लया कदा कि यह निश्चय किया हुआ है कि सब पशु कवच ही होता है इसलिए वह भव जाता भाग में जान्य ही है ज्ञान का एकाग्रता की कवच के कारण कवचाना न पुत्र प्रसूते जानता है और मलय राग रूप भी होता है पशु में तो ज्ञान ही है परन्तु भ्रष्टा के पशु से पुत्रों की पूर्णता करके कवचज्ञान प्राप्त कर मया, स्थिति में तो ज्ञान स्वल्प है पर पशुओं को दिया कवच ही है अथवा मैं क्या नहीं है कि ज्ञान ही है' इस प्रकार की यथायथ भ्रष्टा का कवचज्ञान का प्राप्त करने का एक मात्र मयुज और मयुज (भ्रष्टा) उपाय है।

जा पुत्र यन्तु में जाता है वह सब कवचाना भाग है और जो पुत्र कवची न जानता है वह सब यन्तु में जाता है। इस प्रकार ज्ञान और ज्ञान का परस्पर मेल-मिश्रण है। यदि ज्ञान ज्ञान का मत न मान और कता कम का निश्चितमात्र भी मेल मान तो वह जीव मिथ्यादि है। कवच-ज्ञानी सम्पूर्ण ज्ञानक है उनका निर्णय। पशु के प्रति ज्ञान या सम्यक् मान नहीं होता। सम्पूर्ण के भी एकी भ्रष्टा होती है कि कवचज्ञानी को तरह में भी ज्ञान ही है। मैं निर्णय भी यन्तु का पुत्र नहीं का राक्षस तथा निर्णय वस्तु के कारण मुझ में पुत्र परिवर्तन नहीं होता यदि भ्रष्टा में राग हो जाय तो वह मेरा स्वल्प नहीं है। इस प्रकार भ्रष्टा की भ्रष्टा से सम्पूर्ण भी ज्ञानक ही है। निम्न यन्तु माना कि नियम पूर्वक यन्तु की प्रभवद्वारा दत्ता जाती है यन्तु स्वल्प का ज्ञान है।

ह भाई! यह नियतकार नहीं है, किन्तु मयुज ज्ञान में समान पशुओं के नियम (क्रमबद्ध व्यवस्थाओं) का निर्णय करने वाला पुत्र-प्राप्त है। जब कि समस्त पशुओं की प्रभवद्वारा भ्रष्टा ही है तो मैं उसके नियम क्या करूँगा? निर्णय की व्यवस्था का मयुज स्वल्प के नियम स्वल्प नहीं है। मेरी प्रभवद्वारा व्यवस्था मेरे स्वल्प स्वभाव में न जानता है। इसलिये मैं भ्रष्टा द्वारा स्वभाव में ज्ञान के रूप में ज्ञान ही है—एकी स्वभवद्वारा (भ्रष्टा) में भ्रष्टा पुत्रों का ज्ञान है।

प्रश्न—जब कि सभी क्रमबद्ध हैं और उसमें जीव मारि भी परिवर्तन नहीं कर सकता तो फिर जीव में पुरुषार्थ क्यों रहा ?

उत्तर—सब कुछ क्रमबद्ध है इस निर्णय में ही जीव का अनन्त पुरुषार्थ समाविष्ट है, किन्तु उसमें कोई परिवर्तन करना आत्मा के पुरुषार्थ का कार्य नहीं है। भगवान् जगत का सब कुछ मात्र जानते ही हैं किन्तु वे भी कोई परिवर्तन नहीं कर सकते, तब क्या इससे भगवान् का पुरुषार्थ परिमित हो गया ? नहीं, नहीं, भगवान् का अनन्त अपरिमित पुरुषार्थ अपने ज्ञान में समाविष्ट है। भगवान् का पुरुषार्थ निज में है, पर में नहीं। पुरुषार्थ जब द्रव्य की पथाय है इसलिए उसका कार्य जब की ही पथाय में होता है किन्तु जीव के पुरुषार्थ का कार्य पर में नहीं होता।

जो पद मानता है कि सम्यग्दर्शन और कवलज्ञान दशा आत्मा के पुरुषार्थ के बिना होती है वह निश्चयादृष्टि है। ज्ञानी प्रतिक्षण स्वभाव की पूर्णता के पुरुषार्थ की भावना करता है। अहा! तिरका पूरा शक स्वभाव प्रगट हो गया है व कवलज्ञानी के उनके ज्ञान में मन कुछ एक ही माय शत होता है। एसी प्रतीति करन पर मन्य भी तिरन्टि से दरन वाला हो रहा ज्ञान के अतिरिक्त पर का कृत्य अथवा रागादिन सेन कुछ अभिप्राय में से दूर हो गया। एसी द्रव्यन्टि के मन से ज्ञान की पूष्टता का भावना से वस्तु स्वरूप का चिंतन करता है। यह भावना जाना का है अज्ञानी निश्चयादृष्टि की नहीं है क्यों कि निश्चयादृष्टि भीन पर का कृत्य मानता है और कृत्य की मान्यता वाला जीव कृत्य की दथाय भावना नहीं कर सकता, क्योंकि कृत्य और ज्ञान कृत्य का परस्पर विरोध है।

‘सबसे भगवान् ने अपने कवलज्ञान में जैसा देखा है वही होता है। यदि हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते तो फिर उसमें पुरुषार्थ नहीं रहता’ हम प्रकार जो मानते हैं वे अज्ञानी हैं। ठीक नहीं! वृत्तिमय ज्ञान से प्राप्त करता है? अपने ज्ञान से या दूसरे के ज्ञान से? यदि वृत्ति अपने ज्ञान से ही प्राप्त करता है तो फिर जिन ज्ञान ने सदा का और सभी...

इन्द्रो वा अग्नी का विष्णु वर निम्न उग्र शान में स्वयं
न हो यह हा ही वैश्व नवनी १। स्वयं वा निम्न वरन व
अनन्त पुत्राय है ।

तुन जाने तारे म कटा है कि मरता गणना न अज्ञान कन
ला देना हा देना हाता है ता पट मद्र पता वरन क निग
भावना तुमे संशा के कैवल्यदान का विषय है । पश्य ता यदि तुम्ह
इने का नियम न हो तो संशयमं यद् निर्णय कर और यदि तु म
नि य पूर्वक कहना हा तो सति मीमाणा के वैश्वानर का विषय वरन न इन
में अनन्त पुत्रार्थ का ही जाग ह । अथ ही निर्णय करन न इन
अनंत कीय काय करना है तथापि उग्रम स्वयं करक तु पश्य है
कमबद पयाय म पुत्राय वरां रता । निच ता यद् है कि तुम्ह पुत्र कवत
ज्ञान के रक्षण व ही भद्रो नहीं ह और कवनज्ञान का स्वीकार वरन हा
अनंत पुत्राय तुग्रम प्रण नही हुमा । कवनज्ञान का स्वाकार वरन में
अनन्त पुत्राय का अस्तित्व का पाता ह तथापि यदि उग्र रक्षीधर नहीं
करता ता कहना हागा कि तु मात्र जाते ही करना है किन्तु तुम्ह अन्त र
निर्णय नहीं हुमा । यदि वरन का निगय हा ता पुत्राय की और अथ व
काश न रह । यथाय नियम हा काय और पुत्राय न काय यह हा ही
नहीं रहता ।

अनन्त पंदायी का ज्ञान जाने अनेन पदार्थो म परिपूर्ण है । अ
रहित कर्षणोत्तम का शिष्य ज्ञाने न निर्णय देना उग्र ज्ञान म अज्ञान पुत्राय क
द्वय निष्य निम्न ह या निम्न ही पुत्रार्थ के । निम्न उग्र शानि क्षेत्र
शान के प्रतीति में लियी है उग्रमे रता क निम्न अथ प्रतीति नहीं की
किन्तु राग से प्रथम करक अनेन ज्ञान अज्ञान म स्थिर अथ अथ स्थिति
कवनज्ञान की प्रतीति की ह वरन अज्ञान म स्थिर अथ अथ स्थिति
ज्ञान में भा की पाता न । है । अथ कवनज्ञान की प्रतीति नहीं थी तब

वह अनन्त भव की मर्यादा में भूलना रहता था और अथ प्रवृत्ति होने पर अनन्त भव की मर्यादा दूर हो गई है। तथा अन्त भव में मोक्ष के लिये ज्ञान निश्चय हो गया है। उक्त ज्ञान में अनन्त पुरुषार्थ निहित है। इस प्रकार 'सर्वज्ञ भगवान् ने अपने केवलज्ञान में ऐसा अन्त हो बैसा ही होता है' ऐसी यथाथ अन्त में अपनी भव रहितता का निश्चय समाविष्ट हो जाता है, अर्थात् उक्त मोक्ष का पुरुषार्थ ही अन्त है। यथाथ निश्चय के बल में मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

सभी द्रव्यों की तरह अन्त द्रव्य की अवस्था भी कमबद्ध ही है। जैसे अन्य द्रव्यों की कमबद्ध पर्याय इस जीव से चर्ची होती है वैसे ही इस जीव की कमबद्ध पर्याय अन्य द्रव्यों से चर्ची होती है। अपनी कमबद्ध पर्याय के स्वभाव की प्रतीति करने पर अपने द्रव्य स्वभाव में ही देखा जाता है कि अन्त ! ऐसी पर्यायों तो मेरे द्रव्य में से ही आती हैं द्रव्य में रागद्वेष नहीं है कोई पर द्रव्य मुझे रागद्वेष नहीं करता। पर्याय में जो अन्त रागद्वेष है वह मेरी निवृत्ति का कारण है वह निवृत्ति भी मर द्रव्य में नहीं है। अन्त होने से उस जीव को पर में न देखकर अपने स्वभाव में ही देखना रह जाता है, अर्थात् द्रव्यरूप में स्थिर होना रह जाता है। स्वभाव के अन्त से अन्त काल में राग का दूर करके वह कल्पज्ञान को अवश्य प्रकट करेगा। वस, एही का नाम कमबद्ध पर्याय की अन्त है, इस जीव ने ही सर्वज्ञ को यथावतया जाना है, और यही जीव स्वभावरूप में साधारण हुआ है उसका फल सर्वज्ञ वशा है।

द्रव्य में समय २ पर जो विशेष अवस्था होती है वह विशेष सामान्य में ही आती है, सामान्य में से विशेष प्रकट होता है इसमें केवल ज्ञान भरा हुआ है। (जैन के अनिर्दिष्ट) सामान्य विशेष की यह बात जैन को छोड़कर अन्त में वहीं भी नहीं है और सम्यक्कृति के अनिर्दिष्ट अन्त में उभे यथावतया समझ नहीं सकते सामान्य में से विशेष होता है अन्त सिद्धांत निश्चित करने पर वह परिश्रम निज की भाँट चल जाता है। पर

न मेरी पर्याय नहीं होती निमित्त न भी नहीं होती विद्वत्त्व न भी
हानी और पर्याय में न भी नहीं होती। इन प्रकार सब न लक्ष्य ह्य
तो तीन मात्र द्रव्य की धार मुद्रा द उस जीव को ऐसी प्रतीति
गई है कि सामान्य में मे ही विशेष होता है। भ्रमानी स एषी स्वाधीन
में प्रतीति नहीं होती।

भयान ने ऐसा देगा कि वैसा ही जगत्त द यह निश्चय करन बात
का कार्य पर मे ह्यकर निज में स्तम्भित हा गया । ज्ञान न निज में
नियर हाकर स्वयं की शान्ति का और समस्त द्रव्या का निश्चय निज
द। वह निश्चय रूप पर्याय न ता निगी पर में से भाई द और न विद्वत्त्व
म मे भी भाई है। किन्तु वह निश्चय का शक्ति द्रव्य में सु प्रणत हुई है
प्रकार निश्चय करन जान न द्रव्य का प्रतीति में लकर निश्चय लिया है। ऐसा
निश्चय करने वाला जीव ही मयत्र का मन्त्रा मरु ह। उसका मुख्य भयन
सबस स्वभाव की ओर हुआ है मत वह कहीं भी न रुक कर मन्त्र काउ
म ही सपूर्ण मन्त्रा हा जायगा इससे विरुद्ध भयान् काई द्रव्य द्रव्य द्रव्य
वा फुट्ट दर राकता है एसा तो जानता है वह वाग्व म भयन भ्रान्ता
का सबस के ज्ञान का न्याय का तथा द्रव्य पर्याय को नहीं जानता।

१—भ्रमना भ्रान्ता पर से भिन्न है तब कि वह पर का कुछ करता है
इस प्रकार जानना से भ्रान्ता को पर रूप जानना है भयना भ्रान्ता को
नहीं मनना ही है। २—वस्तु ही भ्रान्त्या सवशाद्व क एख हुय भनु
मर होती है उसकी जाद यह जानना कि में उन द्रव्य घटना है सना क
ज्ञान को यथाय न मनने के समान है। ३—वस्तु की ही द्रमन्त्र भव
गया होती है वह निमित्त करना है भयना निमित्त के परिचय कर कर
यह बात कहां रही ? निमित्त पर का कुछ भी नहीं करता तथापि :
यद जानना है कि मेर निमित्त में पर में काई परिवर्तन होता है व
गवे न्याय को नहीं जानता। ४—द्रव्य की पर्याय द्रव्य में से ही भ्रान्ती
है उसकी जगत्त जा यह जानना है कि पर में न द्रव्य की पर्याय होती

है (अर्थात् जो यह मानता है कि मैं पर धी पर्याय का वर्णन हूँ) वह द्रव्य-पर्याय के स्वरूप का ही नहीं मानता । इस प्रकार एक निरंतर मान्यता में अनन्त असत् का भेदन आ जाता है ।

वस्तु में स क्रमबद्ध पर्याय आती है, उसमें दूसरा कुछ नहीं करता, तथापि उस समय निमित्त अवरय उपस्थित होता है किन्तु निमित्त के द्वारा काइ मा काय नहीं होता । निमित्त सहायता करता हा मो आत नहीं है और न ऐसा ही हाल है कि निमित्त ही उपस्थिति न हो । जैसे हान समस्त वस्तुओं को मात्र जानता है किन्तु किसी का कुछ करना नहीं है किसी प्रकार निमित्त मात्र उपस्थित होता है यह उपादान के लिए कोई असत्, सहायता अरवा प्रेरणा नहीं करता और प्रभाव भी नहीं पाता ।

जिम समय निच लन के पुग्नाथ के द्वारा अत्मा की सम्पद्गणन पर्याय प्रगट होती है उस समय नवे देव, गुरु शास्त्र निमित्तम्प अवरय होते हैं ।

प्रश्न—जीव की सम्पद्गणन क प्रगट होने की तैयारी हा और मधे देव, गुरु, शास्त्र न जिने तो क्या सम्पद्गणन नहीं होता ?

उत्तर—यह हो ही नहीं सकता कि जीव की तैयारी हो और सब्ब देव, गुरु शास्त्र न हो । जब उपादान कारण तैयार होता है तब निमित्त कारण स्वय-मेव आ जाता है, किन्तु कोई किसी का कता नहीं होता । उपादान के कारण न तो निमित्त आता है और न निमित्त क कारण उपादान का काय होता है । दानो म्वनत्ररूप से अपने अपने काय क कर्ता है ।

मधे ! वस्तु धित्ती स्वतत्र है । ममस्त वस्तुओं में क्रम-वर्तित्व चल ही रहा है, एक क बाद दूसरी पर्याय कहे या क्रमबद्ध पर्याय कहे जो पर्याय होता है वह होती ही रहती है । ज्ञानी, जाव ज्ञाता के रूप म जानता रहता है और अज्ञानी जीव कृतृत्व का मिथ्याभिमान करता है । जो पर का अभिमान करता है उसी पर्याय क्रमबद्ध हीन परिणमित होती है, और जो ज्ञाता रहता है उसी ज्ञानपर्याय क्रमग विकसित हाकर क्यन्तज्ञान का प्राप्त हो जाती है ।

हर्षादि)। अयोगी) यदि सुख-दशा चादि को 'हो' तो वह पस्तुस्वरूप) जानना पदगा जिनम मे सुख-दशा प्रगट हो सके ।

मग ! मंगे पयाय भी कमबद्ध हो जाती है इस प्रकार जिसने निश्चय किया उस अपने म नमभाव—ज्ञाताभाव हो जाता है उसे पर्याय को वचन न आवेकता नहीं रहती । किन्तु जा जा पर्याय होती है उनका ज्ञान क रूप में ज्ञान बना होता है । जा ज्ञान क रूप में ज्ञान वाला जाना है उम अरवज्ञान हान म विद्वम्ब नसा । जिसे स्वभाव में ममभारी ज्ञान नहीं है । अर्थात् निम अपने मय न कमबद्ध दशा की प्रतीति नहीं है उम नीके की मवि पर म 'जर्ती' है और उसक विषम भाव से कमबद्ध रूप में विकारी पयाय होती है । ज्ञातृत्व का विगध करकणा पर्याय हानी है व विषम भाव स है । (विकारी है) और निम में दृष्टि करके ज्ञातृत्व क रूप में रूने पर जा पर्याय होता है वह समभाव से कमबद्ध विषय शुद्ध हानी जाती है ।

इसमें गव उर्ध्व अपनी पयाय में ही समाहित हो जाता है । यदि मरनी कमबद्ध पयाय को स्वदृष्टि से कर ता शुद्ध हो और यदि पर दृष्टि से कर ता अशुद्ध हो । पर के साथ संबंध न रहने पर भी दृष्टि मिस और जाती है इसमें पर कमबद्ध पर्याय का भारते है । कोई जीव शुभेभाव करन) स परवस्तु (दत्र, शात्रं गुह्यमर्था मदि इत्यादि) का प्राप्त नहीं कर सक्ता और अशुभ भाव करन से कोइ रक्ता पैसा इत्यादि परवस्तु का प्राप्त नहीं कर सकता । जो परवस्तु पिन काल म और निम क्षेत्र म गार्ते हानी है वही वस्तु उस काल और उम क्षेत्र में स्वय भाजता है । वट मान्यभाव के कारण नहीं जाती । वस्तु की समस्त पर्याय अपने कमबद्ध नियमावली की होती है उनम वई अन्तर नहीं आता । इस समक में वस्तु की प्रतीति और केवदाव स्वभाव का अनन्त वीच प्रगट होता है । इसे मानने पर अज्ञान परवस्तु क परवस्तु का प्रगट मान ज्ञान

जात है। इयम सम्पदार्थन का एसा मूक पुण्याय भता हुआ है कि जिया अनन्त काग में कभा भी नहीं दिया था।

जम भात्मा में सभी पर्यायें कमबद्ध होती हैं उसा प्रकार जम में भी जड की सभी भवस्याय कमबद्ध होती है। कम की जा २ भवत्या होती है उस भात्म, वहीं करता किन्तु यह परमाणु की कमबद्ध पयाय है। कर्म क परमाणुओं में उदय उत्तरण इ दि जा दस भवस्यायें (करण) हैं व भी परमाणु का कमबद्ध दसा है। भात्मा क शुन परिणम क कारण कर्म क परमाणुओं की दग बदल नहीं गइ किन्तु उन परमाणुओं में ही उग समय बद दसा दान की योग्यता थी, गनिय यह दसा हुई है। जीव क पुण्याय क कारण कम की कमबद्ध भवत्या में भग नहीं पइ जना। जीव भात्मा दसा में पुण्याय करता है और उस समय कम क परमाणुमा की कमबद्ध दग उपराम उत्तरणदिग्गप सत्य होती है परमाणु में उगधी भवस्या उसधी योग्यता से, उसाक कारण मे होती है किन्तु भात्मा उसका पुत्र नहीं करता।

प्रश्न—यदि कर्म उस परमाणु का कमबद्ध पयाय ही है ता फिर जित में से कर्म निश्चित क विपुत्र साय भर पडे है उनक सम्बन्ध म क्या समझा जाय ?

उत्तर—ह भाई ! यह सभी शक्य भात्मा का ही बनन पाय है। कर्म का जितना बणन है उसाका भात्मा क परिणम क साथ साथ निमित्त-निमित्तिक सम्बन्ध है। भात्मा क परिणम किम किस प्रकार क हात है य, समझान क निय उपचार से कम में भद करक समझाया है। निमित्त-निमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान करान क निय कम का बणन दिया है, किन्तु जड कर्म क साथ भात्मा का कता कम सम्बन्ध विचित्र मात्र भी नहीं है।

प्रश्न—यद्य उदय उत्तरण उपराम भवत्याय उत्तरण सक्रमण सता निश्चित और निश्चित एम दसा प्रशार क करण (कर्म की भवत्या के प्रकार) क्या कह गय है ?

उत्तर—इसमें भी वास्तव में तो चैतन्य की ही पहचान कराई गई है। कर्म के जो दस प्रकार बताए हैं वे आत्मा के परिणामों के प्रकार बताने के लिये ही हैं। आत्मा का पुरुषार्थ वैसे दस प्रकार से हो सकता है यह बताने के लिये कर्म के भेद करके समझाया है। आत्मा के पुरुषार्थ के समय प्रस्तुत परमाणु उसरी योग्यता के अनुसार स्वयं परिणामन करता है। इसमें दानों के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान कराया है, परन्तु यह बात नहीं है कि कर्म आत्मा का बूझ करते हैं।

एक कर्म परमाणु भी द्रव्य है उसमें जो अनादि अनन्त पयाय जाती है वही समय समय पर क्रमबद्ध होती है।

-प्रश्न—आपन तो यह कहा है कि कर्म की उद्दीरणा होता है ?

उत्तर—उद्दीरणा का अर्थ यह नहीं है कि बाद में होना वा-अन्यथा का उद्दीरणा करके जल्दी लाया गया हो कर्म की क्रमबद्ध अवस्था ही टूट तरह की होगा है। जीव न आपन में पुरुषार्थ किया है यह बताने के लिये उपचार से ऐसा कहा है कि कर्म में उद्दीरणा हुई है। वास्तव में कर्म की अन्यथा का क्रम बदल नहीं गया परन्तु जीव न आपन पयाय में उस प्रकार का पुरुषार्थ किया है-उसका ज्ञान कराने के लिये ही उद्दीरणा कही जाती है।

जहां यह कहा जाता है कि जीव अधिक पुरुषार्थ करे तो अधिक कर्म उत्पन्न होते हैं यह भी वास्तव में जीव ने कर्मों का निगमन का पुरुषार्थ नहीं किया किन्तु अज्ञान स्वभाव में रतन का पुरुषार्थ किया है। जीव के विरोध पुरुषार्थ का ज्ञान कराने के लिये उपचार से ऐसा कहा जाता है कि अज्ञान समय के कर्म परमाणुओं का अत्यन्त में ही नष्ट कर दिया है। इस अज्ञानपिण्ड बंधन में शरीर बन्धुस्वरूप तो रह है कि जीव ने स्वभाव में रहने का पुरुषार्थ किया और उस समय जिन कर्मों की अन्यथा स्वयं उत्पन्न रूप की वे कर्म उत्पन्न गये। परमाणु का अन्यथा का क्रम में भंग

नदी पटना। वसुधा हीन क कम लक्ष्मण म जन दिव 'मन्त्र-
ही मया मी वाहिय-दि प्राय न यस्त गा पुष्पण मर्णा पयाय म
दुगा म्य परिमननभाय है प्रर व मन भाय मर्णाद्व प
परिमित शक्त है। इहा म्य पर का नशायन क निता म्यय
हाय है द भय क न म मन्त पुष्पण है। पुष्पण क नि
की एक भा पयाय नर्मा जल। मय पुष्पण-की उन्मयना मर्णा भा
की नगह तार पर की प्रार वरत है मर्णा मक्षाल। इने छरि वह रवम
दुवि कर न स्वभार की प्रार एतु मयाव पयाय कम न्यु हा

२। व न श सवक म मन्मा क मोल वा मय निगा २ २
इस वा क। म्रुव निवपण करक समकना चरिय उमे जग म
नी चरिय उमे दिलिय पूरक म्म करक जनत क्षान्ति। परम सत
टकना नगी वाहिय र्निनु। ऊहापा। करक वराय नि तपय पूरेह निव्वय क
वाहिय। म्य म शिवा का लजा, नी हर्ष दत ता वन्मुवदक ह।

सम्पदष्टि घमाभा मयन सम्पयान म यद जलगा इ दि एरेण भगवान्।
मयन इल में प्रा जना ह उभी प्रकार प्रयद म्रु मन्वदु परिदनि-
हानी है। मर-पत्रशान-पयाय भी कमरु रूप म मर स्वय्य म से-दी
प्राय हागा। मदी मन्त्रक भावना म मया। म न यरुक्त स्वभाय म शकाय
हावा है प्रार छाता गाल प्रति पयाय में लभउ हाती लान्य तथा विचार
पयाय कम दूर हाती जती ह। शीन कहता है कि इममें पुराधि नहीं
है निग क एत स्वभाव में है वह सम्पदष्टि है और इम स्वभाव म ज
तौनेर भी मइर क वदन कगा है यह निव्याप्ति है उम सवा क शान
की प्रार मयने जाता स्वभाष का जगा नदी ।

महा इग मन्त्र वि रीव की भावना ता वरत । वह। स्वभाव मही
प्रार करत है और स्वभाव म दा शान पूव करता ह। उयन जही म
प्रारम निगा था वही का वही ता, दग है प्रामा में म्वाधय सु साधक
एग प्राय क ह और पूजा ना रगाय म चागा में, है हाता है ।

स्वतन्त्र। संपूर्णतया' निज में ही समाविष्ट हो जाता है'। संशय भ्रमात्मा
 अपने-उभ ही समाविष्ट होना चाहता है। उममें बौद्ध में उन दो बंधों में
 प्रारंभ किया है और अन्त्याय में बंधों में इन घाला है। आत्मा का भाग
 आत्मा में उभे निकल कर आत्मा में ही समाविष्ट हो जाता है।

यहां मात्र जीव की ही बात नहीं है, किंतु सभी प्रदारा वा अस्व-
 क्रमबद्ध होती है। यहां मुरप्यतया जीव की बात समझाई है। आत्मा की
 अस्व-आत्मा में ही क्रमबद्ध प्रगट होती है, उच्च निश्चय करन में अनन्त
 वाप है। उच्च निश्चय करन पर मुहल अनन्त प्रदार्थों का अस्व-पुनः मान
 कर वा रागद्वेष होता था वह सब दूर हो गया पर निमित्त का स्वमित्त
 मज्जर जो वीर्य पर मरुत जाता था वह अत्र भवन आत्म-स्वभाव का
 दंगन में लग गया है राग निमित्त इत्यादि का और ही प्रति गई और
 आत्म में दृष्टि हो गई। स्वभाव दृष्टि में अपनी पश्यती स्वाधीनता की
 कैसी प्रतीति होती है तन्मस्वन्ती य बात है। स्वभाव-दृष्टि को समक
 रिता मत तप भक्ति दान और पठन, पाठन आदि सब विना इवादे क गन्य
 क समान व्यर्थ है। मिथ्या-दृष्टि जीव क यह कुछ सब नहीं होते।

१०। १। तीरी वस्तु में भगवान् चिन्ती ही परिपूर्ण शक्ति है भगवन्ना
 वस्तु में ही प्रगट होती है। यदि उस अवसर पर अर्थोर्थ वस्तु को दृष्टि
 म-न-ल तो वस्तु क स्वरूप को जाने-विना जन्म मरण वा अनन्त में
 हा सरता। वस्तु क जानने पर अनन्त सत्तार दूर हो जाता है। वस्तु में
 स्पार नहीं है, वस्तु की प्रतीति होन पर मोन-पर्यय का उपासी की प्रति
 ध्वनि-ज्ञान लगती है। भगवन्! यहाँ-पर स्वभाव की आत्मा है। अथवा ही
 ता कहें। पर-स्वभाव की स्वीकृति में से स्वभाव-दशा की अस्ति भागेगी,
 स्वभाव-गोमर्ष्य उस प्रकार-मत-कर-सब प्रकार-मे अवसर आ-पुनः है
 भवन-द्रव्य में दृष्टि-कर-केन द्रव्य में से मादि-अनन्त सौत्त दशा प्रगट
 होती है, उस

बल से मोक्ष दशा प्रगट हो जाती है।

निये किसी पर वस्तु पर रागद्वेष करने का कारण नहीं रहेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि समस्त परपदार्थों का लक्ष्य जोड़कर आत्मनिरीक्षण में ही लग जाता है । ऐसा होने पर अरने में भी ऐसा आकृष्टता का विस्मय नहीं रहेगा कि 'मेरी पूर्ण शुद्ध पर्याय जब प्रगट होगी' । क्यों कि तीन का ही क्रमवद्ध पर्याय से भरा हुआ द्रव्य उसी प्रतीति में आगया है । तात्पर्य यह है कि जो क्रमवद्ध पर्याय की श्रद्धा करता है वह तब अररय ही आत्मन मुक्ति गामी होता है ।

क्रमवद्ध पर्याय की श्रद्धा होने पर द्रव्य की अवस्था चाहे जिससे ले किन्तु उमम यह विचार (राग-द्वेष) कदापि नहीं होना कि—“ यह ऐसा क्यों हुआ ? यदि ऐसा हुआ होता तो मुझे टाफ हाता । ” क्रमवद्ध पर्याय का निश्चय करन वा के यह श्रद्धा होती है कि इस द्रव्य की इस समय एमी ही क्रमवद्ध अवस्था होगी थी, वैसा ही हुआ है, तब फिर वह उसमें राग या द्वेष क्यों करेगा ? जिस समय जिस वस्तु की जो अररया हाती जाती है उसका वह मात्र ज्ञान ही करता है, बम, वह ज्ञाता हा गया हाता रूप में रहकर वह अररज्ञान में ही केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त करेगा । यह क्रमवद्ध पर्याय की श्रद्धा का फल है ।

क्रमवद्ध अवस्था ना निर्णय उगी ज्ञायकभाव का अर्थात् वीतरागस्वभाव का निर्णय है, और वह निर्णय अनन्त पुरुषार्थ से हो सकता है । पुरुषार्थ को स्वीकार, निये विना मोक्ष की ओर की क्रमवद्ध पर्याय नहीं होती । जिसके ज्ञानमें पुरुषार्थ का स्वीकार नहीं हाता वह अपने पुरुषार्थ को प्रारम्भ नहीं करता, इसनिये पुरुषार्थ व विना उसे सम्यग्दर्शन और कवलज्ञान नहीं होता । पुरुषार्थ को स्वीकार न करने वाले भी क्रमवद्ध पर्याय निर्मल नहीं होती, किन्तु विकारी होगी । अर्थात् पुरुषार्थ को स्वीकार न करने वाला अनन्त संसारी है और पुरुषार्थ को स्वीकार करने वाला निष्क मोक्षगामी है । चाहे क्रमवद्ध अवस्था का निर्णय कहे या पुरुषार्थवाद कहे— वह यही है ।

प्रश्न—यदि क्रमवद्ध पर्याय जब जो हानी हा बही हो, तो फिर विकारी भाव भी जब

हो होंग ?

उत्तर—भर भाई ! तब प्रश्न विपरीतता का लक्षण उपस्थित हुआ है ।
 तिमने मनन करने में यह प्रवृत्ति का ही है कि विपरीत प्रयोग जब करने
 की तब हुई तो उसी तबि बनी पाछे मन्त्री है । विचार का जनन
 काव का हान का तबि ह या विचार की है विचार का उपस्थित जानन
 का काम करने वाला वीच ता मनन करने का है और उस हान का वीच
 विचार से हटकर स्वभाव क हान में प्रकट रहा है स्वभाव क हान म
 प्रकट हुआ वीच विचार की या पर की दिति में कदापि नहीं प्रकटता किन्तु
 स्वभाव क हान से विचार का प्रकटता में लय धारा है । कि विचार
 की दिति है उसी दिति का वन (वीच का भाव) विचार का भाव जाता है ।
 लो हानी होती है वही प्रयाय कमबद्ध होता है इस प्रकार तिमका वीच
 स्वीकार करना है यह स्वीकार करने का क वीच में पर म लयवृद्धि
 नहीं होती किन्तु स्वभाव में ही लय धारा है ।

जसे तिमरी बड़ भादमी के यहाँ राणी का भयमर हो और वह मच की
 भावून निमग्न ठकर विविध प्रकार के मिटा निमाउ—श्री प्रकट ददा सर्व
 कहेर क पर में भावून निमग्न है मुक्ति क मन्त्र में सर्वो भयमर
 है समस्त विरता भ्रामरण है । मुक्तिमन्त्र क हय-भोज म सर्वो भयवान
 के द्वारा लिख्यमानि में परसे मय न्याय में स उप प्रकट क न्याय पराम
 जाने है तिम पचान से भावना पुण होता है ।
 यदि तुम स्वयं-भयवान होना हा ता त भा हय बल का मन । जा
 हय बल को स्वीकार करना है उसी मुक्ति निरिचय है । ता यह है मुक्ति
 मउप और हसका हर्ष-भोज इसे स्वीकार कर । मय मय ३२१-३२२
 में वा वस्तुस्वरूप बताया है उसी निरय दटना क तिम ३२३ वीं गाथा
 कहते हैं । जो जीव पदम गया १०१-३०२ में कह मय वस्तुस्वरूप का
 जानता है वह मन्दगति है और जो लगने मगय करता है वह मिथ्यागति है—
 एव ता विच्ययदा लणदि दत्ताधि सख्यपञ्चग ।
 सो सद्दिनी मुद्धो जो सकदि सा हु कुदिति ॥ ३२३ ॥

अथ — इस प्रकार निश्चय से सबद्रव्या (जीव, पुद्गल, मन, अणु, अकार, काल) तथा उन द्रव्यों की समस्त पर्यायों को जो सबद्रव के आगमात् सार जाता है—अर्थात् करना है—यह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, और जो ऐसी अर्थात् नहीं करता—अर्थात् सठक करता है वह मन का आगम के प्रतिवृत्त है—प्रगट रूप में मिथ्यादृष्टि है ।

सबद्रव ने कवलज्ञान के द्वारा जानकर जिन द्रव्यों और उनकी अनादि अनन्तकात् की समस्त पर्यायों का आगम में कहा है व सब जिस केशन में और प्रतीतिमें जम गया है व “सन्धिमुद्रा” अर्थात् शुद्ध सम्यग्दृष्टि है । मूल पाठ में ‘मो सन्धिमुद्रा शुद्ध’ यह कद कर भार दिया है । पहली बात अस्मि की अणुता से कही और फिर नास्ति की अणुता से कहते हैं नि सदादि गा हु बुद्धिगी’ अर्थात् जो उस में गरा करता है व प्रगट रूप में मिथ्यादृष्टि है—सर्वज्ञ का शत्रु है ।

स्वामी कार्तिकेय भाषार्थ न इन ३ १-३० -३२० की गायामों से गूढ़ रहस्य गकटित करके रग दिया है । सम्यग्दृष्टि चीव बराबर जानता है कि प्रकृतिक समस्त पदार्थों की अवस्था क्रमबद्ध है । सर्वज्ञ देव और गम्य दृष्टि में इतना अन्तर है कि सबद्रव समस्त द्रव्या की क्रमबद्ध पर्यायों को प्रत्यक्ष ज्ञान से जानते हैं और सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा समस्त द्रव्यों की क्रमबद्ध पर्यायों का आगम प्रमाण में प्रतीति में लता है अर्थात् परोक्ष ज्ञान से निश्चय करता है । सर्वज्ञ के वर्तमान रागद्वेष साया दूर हो गये हैं । सम्यग्दृष्टि के अभिप्राय में भी राग-द्वेष सर्वथा दूर हो गये हैं । सर्वज्ञ भगवान् कवलज्ञान से त्रिकाल का जानते हैं । सम्यग्दृष्टि चाय यद्यपि कवलज्ञान से नहीं जानते तथापि वे ध्रुवज्ञान के द्वारा त्रिकाल के पदार्थों की प्रतीति करते हैं । उक्त ज्ञान भी निजर है । पर्याय प्रत्येक वस्तु का धर्म है । वस्तु स्वतन्त्रतया अपनी पर्यायरूप में होती है । जिस समय जो पर्याय होती है उसके मात्र जानना ही ज्ञान का कर्तव्य है । जानने के बाद ‘यह पर्याय यों कैसे हुई’ अर्थात् गणना करने या जो वस्तु के स्वतन्त्र ‘पर्यायणम’

और ज्ञान के काय की सार नहीं है। ज्ञान का काय मात्र जानना है जानने में यह कैसे हुआ? इस प्रकार की सारा का स्थान ही नहीं है? 'येता कैसे?' ऐसी सारा करना ज्ञान का स्वरूप ही नहीं है किन्तु 'जा पयाय होती है यह वस्तु क घभावुसार ही होती है' इसलिए जैसी होती है उसी प्रकार उसे जानना ज्ञान का स्वभाव है। इस प्रकार ज्ञानमयता का निष्पत्ति करके जाना सारको निरूपण में जानना रहता है। ऐसे ज्ञान क वस्तु से कवचज्ञान और अन्तःपयाय क बीच क अन्तर को तोड़कर पूर्ण कवचज्ञान को अल्पकाल में ही प्रगट कर सता।

जा जो वस्तु की कमबद्ध स्वतन्त्र पर्याय का नहीं मानता और यह मानता है कि मैं पर का कृत्र कर सकता हूँ-उसमें परिवर्तन कर सकता हूँ और पर मुझे रागद्वेष करता है' उस सार के ज्ञान की भ्रमा नहीं है तथा यह सार क भागम से प्रतिकृत प्रगट सिध्दाष्टि है। जा यह मानता है कि जा सार के ज्ञान में प्रतिभाषित हुआ है उसमें मैं परिवर्तन कर हूँ यह सार के ज्ञान से नहीं मानता। जो सार क ज्ञान को और उसी ती मुग्धाणी के न्यायों को नहीं मानता वह प्रगटमय से सिध्दाष्टि है। सार वर तीन काष्ठ और तीन लोक क समस्त इयों की समस्त पर्यायों को जानते हैं और सभी वस्तु की पर्याय प्रगटरूप में उसी से स्वयं होती है तथापि जा उससे विरुद्ध मानता है (सार क ज्ञान से और वस्तु क स्वरूप से विरुद्ध मानता है) वह सार का और अपने आत्मा का विरोधी एव प्रगटरूप में सिध्दाष्टि है।

यद्यपि पयाय कमबद्ध होती है किन्तु वह बिना पुरुषात् के नहीं होती। जिस और का पुरुषात् करता है उस और की कमबद्ध पर्याय होती है। यदि कोई बड़े कि इसमें ती नियत भागया ताँ उसके उत्तर में बढ़ते हैं कि हे भाई! त्रिज्ञान की निज पर्याय का निष्पत्ति करने वाला वीन है? जा त्रिज्ञान की पर्यायों से निज कृता है वर मानों द्र य हो ती नियत करता है। पर के सार से निज का नियत मानना है वर एमान्तगरी वाली है और

अपने स्वभाव के लक्ष से स्वयं स्वभाव में मिलकर— स्वभाव की एकता करके, राग का दूर करके शायक हो गया है उसके अपने स्वभाव के पुरुषार्थ में नियत समाविष्ट हो जाता है। जहाँ स्वभाव का पुरुषार्थ है वहाँ नियम से मात्र है अर्थात् पुरुषार्थ में ही नियत आ जाता है। जहाँ पुरुषार्थ नहीं है वहाँ मात्र पुरुषार्थ का नियत भी नहीं है।

महा । महा सन्न मुनीश्वर ने जगल में रहकर आत्मस्वभाव का अमृत प्रवाहित किया है। आचार्यदेव वम क स्तभ हैं, आचार्यदेवों ने पवित्र धर्म को सहग देकर उसे स्थिर रखा है। एक एक आचार्यदेव न अद्भुत कार्य दिया है। मायकदशामें स्वरूप की शान्ति का वेदन करते हुए परीपहों का चतुर्धर परम सत्य का जातिन रखा है। आचार्य देव क कथन में कउत्पा की प्रतिरनि गर्जित हो चुकी है। उस मदान शास्त्रा का रचना करके आचार्यों ने अनजानक जीवा पर अपार उपकार किया है। उनकी रचना को देखो, पद पर पद किन्ना गम्भीर रहस्य भरा है। यह तो सत्य की धोपणा है। इस क सत्कार अपूर वस्तु है, और इसे समझना मानों मुक्ति को धरण करन का श्रीफल है। जो इसे समझ लेता है उसका मात्र निमित्त है।

प्रश्न—जो हाना होता है सो हाना है, ऐसा मानन में अनेकान्त स्वप्न वहाँ आया ?

उत्तर—जो हाना होता है, वह वैसा होता है अर्थात् पर का पर से होता है और मेरा मुक्त से होता है। यह जानकर पर से हटकर जो अपनी भार उन्मुक्त हुमा, उमने स्वभाव के लक्ष से माना है उमकी मान्यता में अनेकान्त स्वप्न है और 'मेरी पयाय मेरे द्रव्य में मे क्रमवद् आती है, मेरी पयाय पर में मे नहीं आती' इन प्रकार अनेकान्त है। तथा 'पर की पयाय पर के द्रव्य में से क्रमवद् जो होनी होती है सो होती है, मैं उसकी पयाय का नहीं करता' इस प्रकार अनकान्त है। 'जो हाना होता है वही होता है' यह जानकर अनेकान्त द्रव्य का धार उन्मुक्त होना चाहिए

परन्तु जो हाता छोटा है न हाता है ' इस प्रकार के मात्र परसे मानना / किन्तु मान लय वें पचाय वने में भाली ह मारी प्रतीति नहीं करी। अतएव पर लय वें अकार मन्त्रा नहीं करनी पर लयप्राप्त है।

प्रश्न—भगवान ज ता भावमार्ग क पांच गुणवाय कह है और मन्त्र मात्र पुण्याय पुण्यार ही एव करत है तो फिर उगरे मन्त्र पर समयनित प्रकर भात है ।

उत्तर—परी जीव गुणवा पुण्याय करनी ह वरी मय अन्य भाग गुण वाय मन्त्रिय हात है । वाच मन्त्रार्थों वा मन्त्रिय स्वरूप म प्रक है —

१—र पर क पुत्र वन वाता नही हूँ ता श्राद्ध हूँ मरी परम मर इय म से मनी ह इस प्रका मन्त्राति वक्र पर वा इति व तदना मा पुण्याय ह ।

२—मन्त्राति का पुण्याय करत हुए जो निमन दगा प्रक हाती कह स्वभाव में ही गा वरी प्रक हुए मन्त्रा जो गुणवा प्रक हाती कह स्वभाव ह ।

३—स्वभाव टि क पुण्याय म स्वभाव में म जो प्रमनद पयाय उ ममय प्रक हाती थी वरी गुद पयाय उम ममय प्रक हुई गो नियति ह मन्त्रा की इति क वन म स्वभाव में जो पयाय प्रक होन को गति थी वरी पयाय प्रक हुई है । वन स्वभाव में से किन ममय जो द प्रक हुई वरी पयाय उगता नियति ह । पुण्याय मन्त्र वाच जीव क स्वभाव में जो नियति है वग प्रक हाती ह, बाहर से नहीं मन्त्र ।

४—मन्त्राति क पुण्याय क ममय जो दगा प्रक हुई वरी उग वन का स्वभाव है । पदन पर ही मन्त्र मुदना था मन्त्रे लाह स्वाम्मुन हुआ ता वरी स्वभाव ह ।

५—जय स्वभाव टि से यह चार मन्त्राय प्रक हुये तब निमित्त हय मने उगरी मनेने योग्यता में स्वयं हय मय, यह वरी ह ।

इस में पुरुषार्थ, स्वभाव, नियति और वात यह चार समवाय अद्वैतरूप हैं अर्थात् वे चारों उपादान की पर्याय से सम्बद्ध हैं और पाचवाँ समवाय नाम्निरूप है वह निमित्त से सम्बद्ध है। यदि पाचवाँ समवाय आत्मा में लाया करना हो तो वह इस प्रकार है—परो-मुग्धता से हटकर स्वभाव की ओर मुड़ने पर प्रथम क चारों का अग्निरूप में, और कम का नाम्निरूप में इस प्रकार आत्मा में पाचों समवायों का परिणमन हो गया है अर्थात् निज के पुरुषार्थ में पाचाँ समवाय अपनी पर्याय में समाविष्ट हो जाते हैं। प्रथम चार अग्नि में और पाचवाँ नाम्नि से, अपन में है।

जब जीव न सम्बद्ध पुरुषार्थ नहीं किया तब विकारीभाव क नियम कम निमित्त कर्नाथा और जब सम्बद्ध पुरुषार्थ किया तब कम का अभाव निमित्त रहनाया। जीव अपन में पुरुषार्थ क द्वारा चार समवायों को प्रगट कर और प्रस्तुत कम की दशा बदलनी न हो एसा हो ही नहीं सकता। जीव निज लक्ष करके चार समवाय रूप परिणमित होता है और कम की ओर लक्ष करके परिणमित नहीं होना (अर्थात् उदय में युक्त नहीं होता) तब कर्म की अवस्था से निष्पन्न बड़ा जाना है। जीव जब स्वसन्मुख परिणमित होता है तब मात्र ही कम उदय में हो किन्तु जीव क उस समय क परिणमन में कम क निमित्त की नाशित है। स्वयं निज में एकमेक हुआ और कम की ओर नहीं गया मा यही कर्म की नाम्नि अर्थात् उदय का अभाव है।

आत्मा में एक समय की स्वसन्मुखदशा में पाचाँ समवाय आ जाते हैं। जीव जब पुरुषार्थ करता है तब उसके पाचों ही समवाय एक ही समय में होते हैं। स्वकी प्रतीति में पर की प्रतीति आ ही जाती है। ऐसी कम बढ़ वस्तुस्वरूप की प्रतीति में केवलज्ञान का पुरुषार्थ आ गया है।

प्रश्न—जीव क अज्ञान को प्रगट करने का पुरुषार्थ कर, किन्तु उस समय कम की क्रमशः अवस्था अधिक समय तक रहनी हो तो जीव के केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा।

उत्तर—तेरी गमा! अद्भुत है तुम्हें अपन पुरुषार्थ का ही विश्वास नहीं है, इसलिए, तेरी दृष्टि कम का ओर प्रवृत्ति हुई है। जो ऐसी शक्ता करता

हे कि 'सूर्य का उदय होगा और फिर भी यदि अंधकार नष्ट न हुआ तो ?' यह मूल है। इसी प्रकार मैं पुण्याय कम और कम की ज्योतिषाधिक समय तक रहनी ही तो ? जा ऐसी शक्ता करता है उस पुण्याय की प्रतीति नहीं है, यह मिथ्याचिन्ति है। कम की क्रमबद्ध पर्याय ऐसी ही है कि जब जीव पुण्याय करता है तो वह स्वयं ही दूर हो जाती है। 'कम अधिक बाल तक रहना ही तो ?' यह दृष्टि तो पर की और प्रकृतित हुए है और ऐसी शक्ता करने पाठ न अपने पुण्याय को पराधीन माना है। कुछ अपने आत्मा के पुण्याय की प्रतीति है या नहीं ? मैं अपने स्वभाव के पुण्याय से कवलज्ञान प्रकृत करता हूँ और जब अपनी कवलज्ञान द्वारा प्रकृत करता हूँ तो पानिया कर्म होते ही नहीं ऐसा नियम है। जिस उपादान की थदा ही उसे निमित्त की शक्ता नहीं होती और जो निमित्त की शक्ता में अटक गया है उपादान का पुण्याय ही नहीं किया। जो उपादान में तो निश्चय है, और निमित्त है तो व्यवहार है।

निरचय नम सपूर्ण द्रव्य को लक्षण में लता है। सपूर्ण द्रव्य की थदा में कवलज्ञान से कम की स्वीकृति ही कहाँ है ? क्रमबद्ध पर्याय की थदा में द्रव्य की थदा है और द्रव्य की थदा में कवलज्ञान से हीन दशा की प्रतीति ही नहीं है। इसलिये क्रमबद्ध पर्याय की थदा में कवलज्ञान ही है।

कवलज्ञानी निश्चय से तो सपूर्ण आत्मज्ञ ही है किन्तु व्यवहार से नहीं है। सम्पूर्ण आत्मज्ञ होने से सब्र कहना है। आत्मज्ञता के बिना सब्रता हो ही नहीं सकती।

सब्र सभी वस्तु की पर्यायों के क्रम को जानता है इसलिये जो निम्नदशा में भी यह प्रतीति में लाता है कि 'सभी वस्तुओं की क्रमबद्ध पर्याय है' यह जीव सर्वज्ञता को स्वीकार करता है और जो सर्वज्ञता को स्वीकार करता है वह आत्मज्ञ ही है क्योंकि सर्वज्ञता कभी भी आत्मज्ञता के बिना नहीं होती। जो जीव वस्तु की सम्पूर्ण क्रमबद्ध पर्यायों को नहीं जानता

वह सर्वज्ञा को नहीं मानता, और जो सज्ञता को नहीं मानता वह आत्मज्ञ नहीं हो सकता ।

आत्मा की सन्पूण जनशक्ति में सभा वस्तुर्था की तीनों काल की पर्यायें जैसी होनी होनी हैं वेगी ही ज्ञात होता है, और जैसी ज्ञात होती है उगी प्रकाश होती है । जिसे ऐसी प्रतीति हो जाती है उसे धम्मवद् पर्याय की और मज्ज सी शक्ति की प्रतीति हो जाती है और वह आत्मज्ञ हो जाता है आत्मज्ञ जो सबज्ञ अवश्य होता है ।

वस्तु के प्रत्येक गुण का पर्याय प्रवादवद् चलती ही रहती है । एक और मज्ज का वैश्वज्ञान परिणमित हो रहा है दुमरी और जगत् का सब द्रव्यों की पर्याय भरणे का भीतर धम्मवद् परिणमित हो रही है । भर ! धर्मों एक दुमरी का क्या कर सकता है ? समस्त द्रव्य भरण आप में ही परिणमित हो रहे हैं । धर्म ! एसी प्रतीति करने पर ज्ञान अज्ञान ही रह गया सबमें से एक-द्वेष उठ गया और मात्र ज्ञान रह गया था कवलज्ञान है ।

परमाणु से निमित्त के बिना ही कार्य होता है । विकाररूप में या शुद्धरूप में जीव स्वयं ही निज पर्याय में परिणमित होता है और उस परिणमन में निमित्त का तो नास्तिक है । कम और आत्मा का सम्मिलित परिणमन दोधर विकार नहीं होता । एक वस्तु का परिणमन का समय परवस्तु की उपस्थिति हो तो इससे क्या ? परवस्तु का और निज वस्तु का परिणमन निवृत्त भिन्न ही है, इसलिए जीव की पर्याय निमित्त के बिना भरणे आप से ही होती है, निमित्त कहीं जीव की एक-द्वेषादि पर्याय में धुन नहीं जाना । इसलिए निमित्त के बिना ही एक-द्वेष होता है । निमित्त की उपस्थिति होती है तो तो ज्ञान धर्म के लिए है ज्ञान की सामर्थ्य होने से जीव निमित्त को जानता भी है परवस्तु निमित्त के कारण उपादान में धुन का नहीं होता ।



आत्मस्वरूप की यथार्थ समझ सुलभ है ।

अपना भा महत्स्वरूप समझना मगम ह दितु क्रमार्थ से स्वल्प क प्रनम्याम क कारण कनि मानुम होता है । यदि काइ मथार्थ दधि पूर्वक मनमना काइ ती धद सरत्र ह ।

चाइ जितना चतुर काीगर हो तथापि धद वो घनी में मरान तगर नहीं कर सकता दितु यदि आत्मस्वरूप की परिचाय करना चाइ वो यह दो घनी में भा हो सकी ह । भाट वय का बायन तव मन का धामा नी उठा सकता नि तु दसाथ सम्म क द्वारा क्रमार्थ की द्रु ति करक कवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है । आत्मा पछाय में काई पवि न नी कर सकता नि तु दर-दन्ध में पुण्य-व्य क द्वारा समस्त अज्ञान का नाश करक, सम्पक्कान को प्रयट करक कवलज्ञान प्राप्त कर सकता है । स्व में परिवर्तन करन के लिये आत्मा मपूर्ण स्वतंत्र है दितु पर में पुण्य-व्य करन के लिये आत्मा में निचित भाप्र सामन्य नहीं है । आत्मा में इतना अपार स्वाधीन पुरपा- विद्यमान ह ति नि वर उठ्या चा तो दा घनी म सातों नरक जा मरता ह और यदि शीधा चल ता ता घनी में केवलज्ञान प्राप्त करक सिद्ध हो सकता ह ।

परमात्म श्री समन्तारजी में कहा ह ति— यदि यह आत्मा अपर शुद्ध आत्मस्वरूप को पुत्रलदन्ध से भि न ता घनी क लिये अनुभव करे (उसमें लीन हाजाय) परिधर्मा क ध्यान पर नी न गिग ता पालिका कर्मों का नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त होजाय । आत्मापुभव

की ऐसी महिमा है ता मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का होना सुखम ही है इसलिये श्री परम-गुरुओं ने भी उपदेश प्रधाता सं दिया है ।'

श्री ममदंगार प्रवचनों में आत्मा की पहिचान करन के लिये वा-पर प्रेरणा की गई है कि—

(१) ध्यान्य एक निजातरूप आनन्द को चिन्तित प्रयत्न करके दत्व । उस आनन्द के भीतर ध्यान पर तू शरीरालि क माह को तत्काउ द्वाइ सकगा । 'मगिति' अथात् मत् सं द्वाइ सकगा । यह बात सरल है, क्यों कि यह तेर स्वभाव की बात है ।

(२) सातव नरक की अनंत बदनाम पड हुए जावा न भी आत्मानुभव प्राप्त भिचा है तन यहाँ पर सातव नरक क बराबर ता पीना नहीं है । मनुष्य भव प्राप्त करन रोना क्या गया करता है ? अब सन्समागम से आत्मा की पहिचान करके आत्मानुभव कर ! इस प्रकार ममदंगार प्रवचना में बारम्बार हजारों बार आत्मानुभव करने की प्रेरणा की है । जैन-गुरुओं का ध्येयचिन्त ही आत्मस्वरूप की पहिचान कराना है ।

'अनुभव प्रकाश' ग्रंथ में आत्मानुभव की प्रेरणा करते हुये कहा है कि कोई यह जान कि आज क समय में स्वरूप की प्राप्ति कठिन है, ता समझना चाहिये कि वह स्वरूप की चाह ना मिटाने वाला बहिरात्मा है । जब वह निराला होता है तब विस्था करन लगता है । उस समय यदि वह स्वरूप की प्रेरणा अनुभव करे तो उसे कौन रोऊ सकता है ? यह कितन आश्चर्यकी बात है कि वह पर परिणाम मोता सुगम और निज परिणाम को विषम पताना है । स्वयं वेग्यता है, जानता है तथापि यह कहत हुय राजजा नहीं आती कि क्या नहीं जाना, जाना नहीं जाता । जिसना जदगान भव्य जीव गाते है, जिसनी अपार महिमा का जानने सं महा भव-धमण पर द्वा जाता है, ऐसा यह समयगार (आत्मस्वरूप) अविभार जान लना चाहिये ।

यह जीव जनादि ज्ञान से ज्ञान क कारण परद्रव्य को अपना करने के लिये प्रयत्न कर रहा है और शरीरादि को अपना बनाकर रखना चाहता है किंतु परद्रव्य का परिणमन जीव क आशीन नहीं है इसलिये जनादि से जीव क परिश्रम (ज्ञानभाव) के फल में एक परमाणु भी जीव का नहीं हुआ। जनादिराज से देह-हृत्ति पूर्वक शरीर को अपना मान रहा है किन्तु अभी तक एक भी रजकण न तो जीव का हुआ है और न होना वाला है दोनों द्रव्य त्रिकान भिन्न हैं। जीव यदि अपने स्वरूप का अर्थ समझना चाह तो वह पुरुषार्थ के द्वारा मलयकाल में समझ सकता है। जीव अपने स्वरूप का जब समझना चाहे तब समझ सकता है। स्वरूप क समझने में ज्ञान नहीं लगता इसलिये यथाऽ समझ सुख है।

यथायं ज्ञान प्राप्त करने की क्षिति क अभाव में ही ज्ञान जनादिराज से अपने स्वरूप को नहीं समझ पाता इसलिये आत्मस्वरूप समझने की क्षिति करे और ज्ञान प्राप्त करे।

उपादान निमित्त की स्वतन्त्रता

१— उपादान निमित्त ।

उपादान किसे कहना चाहिये और निमित्त किसे कहना चाहिये ?
आत्मा की विमल शक्ति को उपादान कहते हैं । तथा पर्याय की
समय गति को आ उपादान कहते हैं । जिस अवस्था में काय जाता है, उस
समय की वह अवस्था स्वयं ही उपादान कारण है, और उस समय उसे
अनुकूल परद्रव्य निमित्त है । निमित्त को लेकर उपादान में कुछ नहीं होता ।
एक उपादान निमित्त सम्बन्धी विविध प्रकार की मिथ्या मान्यताओं को दूर
करने के लिये अनेक दृष्टान्तों के द्वारा उपादान निमित्त का सिद्धान्त समझाया
जाता है ।

२— गुरु के निमित्त से ज्ञान नहीं होता ।

आत्मा में जो ज्ञान होता है वह ज्ञान आत्मा की पर्याय की शक्ति से
होता है या गुरु के निमित्त से होता है ?

आत्मा की पर्याय की योग्यता से ही ज्ञान होता है, निमित्त से ज्ञान
नहीं होता । जिस समय आत्मा की पर्याय में पुरुषार्थ के द्वारा सम्यक्ज्ञान
को प्रगट करने की योग्यता होती है और आत्मा सम्यक्ज्ञान प्रगट करता
है उस समय गुरु को निमित्त कहा जाता है, किन्तु गुरु के निमित्त
से वह ज्ञान नहीं हुआ है ।

जब जीव में प्रथम सम्यक्ज्ञान का पुरुषार्थ होता है, तब गुरु की वाणी
का योग होता ही है, किन्तु जब तक उस वाणी पर जीव का लक्ष्य है
तब तक राग है, और जब वाणी का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का

० तब उस निमित्त में गुरु का निमित्त बना जाता है । और बीच को जब गुरु के बहुमान का विकल्प उठता है तब वह गा भी कहता है कि गुरु में ज्ञान हुआ है ।

२— यह कहना कि मुझ 'गुरु में ज्ञान हुआ है' सो कफर नहीं किन्तु अज्ञान है ।

प्रश्न — ज्ञान तो निमित्त से ही हुआ है गुरु से नहीं हुआ — यह जानने हुए भी क्यों कहना कि गुरु में ज्ञान हुआ है ना का कफर नहीं कहना क्या ?

उत्तर — व्यवहार में या ही कहा जाता है । यह कफर नहीं किन्तु अज्ञान निमित्त है । गुरु के बहुमान का शुभ विकल्प उठाने हुआ है इतिहास निमित्त में प्राणप किया जाता है ।

प्रश्न — गुरु के बहुमान का विकल्प उठता है या तो टीका है किन्तु क्या-क्या कहा जाता है कि गुरु में ज्ञान हुआ है ।

उत्तर — बहुमान का विकल्प उठता है इतिहास निमित्त में प्राणप करके व्यवहार में बना कहा जाता है । प्राणप ही भाषा ऐसी ही होती है । किन्तु ज्ञान में गुरु में ज्ञान नहीं हुआ है अथवा ज्ञान ही नहीं है कि यदि गुरु न हावे तो ज्ञान नहीं होता । जब सर्वे श्रुतार्थ से ज्ञान करता है तब गुरु निमित्त के रूप में माना जाता है । नी निमित्त है ।

४— मिट्टी में घडारूप प्रयास ज्ञान का योग्यता बना ही नहीं है, किन्तु एक समय की ही है ।

मिट्टी से घना बनना है जो वह उमरी कमान प्रयास ही उस समय की योग्यता में ही बना है वह तुम्हारे क कारण से नहीं बना । कोई यह कह कि मिट्टी में घना बनने की योग्यता तो रादा विद्यमान है किन्तु जब तुम्हारे भाषा सब घना बना तो उसकी यह मान्यता निध्या है । मिट्टी में घनरूप होने की योग्यता सदा नहीं है किन्तु वर्तमान तब ही समय की प्रयास ही वह योग्यता है और फिर समय बदलने में योग्यता होती है तब

समय ही घटा होता है। अन्य पदार्थों से मिट्टी का अलग परिष्कार के लिए व्यापारिकता से यह कहा जाता है कि मिट्टी में घटा होने की योग्यता है। किंतु वास्तव में तो जब घटा होता है सभी उसमें घटा होने की योग्यता है, उससे पूर्व सामान्य घटा होने की योग्यता नहीं, किंतु दूसरी पर्यायों होने की योग्यता है।

५— गुरु का कारण श्रद्धा नहीं होती।

आत्मा पुण्याय से सब्धी श्रद्धा करता है, यह उसका पर्याय की वर्तमान बात है, और गुरु अपने कारण से उपस्थित होता है जो कि निमित्त है। ऐसा नहीं है कि जब ने श्रद्धा की इतनी गुरु का माना पडा और ऐसा भी नहीं है कि गुरु भाये इतनी उनके कारण से श्रद्धा हुई है दोना अपने कारण से है। यदि ऐसा मान कि गुरु भाये इतनी श्रद्धा हुई तो गुरु का और गुरु को श्रद्धा हुई इतनी वह उनका कार्य हुआ। इस प्रकार दो श्रद्धा—कर्मपन हो जायेगा। अथवा ऐसा मान कि श्रद्धा की इतनी गुरु भा गये तो श्रद्धा ही और गुरु भाये तो यह उममा काय कल्याण—और इस प्रकार दो श्रद्धा कर्ता कर्मपन हो जायेगा। किंतु जो श्रद्धा हुई तो वह श्रद्धा की पर्याय का कारण से हुई, और जो गुरु भाये तो वह गुरु का पर्याय का कारण से भाये—इस प्रकार दोना स्वतंत्र है।

६— शास्त्र में ज्ञान नहीं होता।

शास्त्र के सामान्य भा जाने से ज्ञान हो गया हा या बात नहीं है, किंतु सामान्य अपनी योग्यता है उम ज्ञान जीव अपना शक्ति से ज्ञान करता है और तब मात्र निमित्त का रूप में नियमान है। ज्ञान होना हा इसलिये ज्ञान का माना ही पता है ऐसी बात नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि गुरु भाया इतनी ज्ञान हुआ है।

आत्मा के सामान्य ज्ञानस्वभाव का विशेषरूप परिष्कार ही ज्ञान पता है। वह ज्ञान निमित्त के अदलम्बन के बिना और राग के आश्रय के बिना सामान्य ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही होता है।

७-- कुम्हार के कारण घडा नहीं बना ।

मिनी की जिस समय की पर्याय में घण बनने की योग्यता है उस समय वह अपने उद्गारण से ही घडा क दर में आ जाती है और उस समय कुम्हार की उपस्थिति धरन निश के कारण म होती है-जिसे निमित्त कहा जाता है । जब घण बनना है तब- उस समय कुम्हार घणरह न हो पाता नहीं हा सकता किन्तु कुम्हार भाया इयनिये मिटी की भावस्था घडा रूप हो गई तो बात नहीं ह और एसा नी नहीं है कि घडा बनना का स्थानिये कुम्हार को माना घडा । मिनी में उस समय की स्वतंत्र पर्याय का योग्यता से घण बना है और उस समय कुम्हार अपनी पर्याय की स्वतंत्र योग्यता से उपस्थित था किन्तु कुम्हार न घडा की बनाया और न कुम्हार के निमित्त से ही घडा बना है ।

८-- एक पर्याय में दो प्रकार की योग्यता हो ही नहीं सकती ।

प्रश्न-- जब तक कुम्हार रूप निमित्त नहीं था तब तक मिनी में से घडा क्यों नहीं बना ?

उत्तर-- यहाँ यह विशेष विचारणीय है कि जिस समय मिटी में से घडा नहीं बना उस समय क्या उसमें घण बनने की योग्यता थी ? अथवा उसमें घडा बनने की योग्यता ही नहीं थी ?

यदि एसा माना जाये कि जब मिटी में से घण नहीं बना था तब- उस समय भी मिनी में घण बनने की योग्यता थी परन्तु निमित्त नहीं मिला इस्थितिये घडा नहीं बना तो यह मायता ठीक नहीं है क्योंकि जब मिटी में घडाका भावस्था नहीं हुई तब उसमें निहित भावस्था है और उस समय वह भावस्था होने की ही उसकी योग्यता है । जिस समय मिटी की पर्याय में निहित भावस्था की योग्यता होती है उसी समय उसमें घडाका भावस्था की योग्यता नहीं हो सकती- क्योंकि एक ही पर्याय में एक साथ दो प्रकार की योग्यता कदापि नहीं हो सकती । यह विद्वान्त अत्यन्त महत्व का है, यह प्रत्येक स्थान पर ध्यान पर धार्य करना चाहिये ।

इस निश्चित है, निश्चय हुआ कि, निती में-जिस समय, विरह रूप प्रवृत्त्या की उभय समय सममें घटारूप प्रवृत्त्या की योग्यता ही नहीं थी, इसलिये उभय पक्ष नहीं बना परन्तु यह बात मिथ्या- है, कि कुन्दार नहीं था इसलिये पक्ष नहीं बन। ।-

६- 'निमित्त न मिलने तो कार्य नहीं होगा' यह मान्यता मिथ्या है। उत्पन्न की पुत्र का उदाहरण।

'पत्नी के पुत्र होना या किन्तु विषय रूप निमित्त नहीं मिला इसलिये नहीं हुआ' यह बात मिथ्या है। यदि पुत्र होना ही हो तो जिस समय होना से उभय समय होता ही है और उस समय स्वयं विषयदि निमित्त होते हैं। पुत्र अर्थात् एक अल्पा और अनन्त रक्षण माना तो है, किन्तु पति पत्नी मग्नवच पाजन कर रह हैं इसलिये पुत्र के होना का निमित्त नहीं मिलता, इसलिये वे अन्त हुए रह गये हैं-यह मान्यता मिथ्या है। पुत्र होना ही न था अर्थात् उभय और अनन्त रक्षण की दोषों तरल रूप प्रवृत्त्या की योग्यता ही नहीं मानी थी इसलिये वे नहीं प्राये।

'पुत्र होने की योग्यता तो थी किन्तु निमित्त नहीं मिला इसलिये नहीं हुआ और उभय निमित्त मिला था तब हुआ'—इस मान्यता का अर्थ यह हुआ कि निमित्त न कार्य मिया, यह तो प्रवृत्तियों की एतत्त्व बुद्धि ही है। अथवा माला पिता ने निमित्त का माय प्रयोग नहीं किया इसलिये पुत्र नहीं हुआ यह बात भी निश्चय है। जब पुत्र होना की योग्यता होती है तब होता है और उभय समय विषयदि या अशुभ विरह रूप तथा शरीर का योग रूप क्रिया होती है-उभय निमित्त रहते हैं। किन्तु पुत्र उत्पन्न होना या इसलिये विकल्प प्रवृत्त्या नहीं होना और किता तब विरह रूप हुआ इस कारण से पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। और ऐसा भी नहीं है कि विषय का, अशुभ विरह रूप हुआ इसलिये यह भी निश्चय हुई, और यह भी किया होनी थी, इसलिये, अशुभ विरह रूप। किन्तु प्रत्येक प्रवृत्त न अपना कार्य स्वतंत्रता से मिया है।

१०— जीव निमित्तों को मित्रा या हृत्वा नहीं । सत्त्वा, भाव
। अपना लक्ष्य बदल सकता है ।

जीव ध्यान में शुभभाव कर सकता है । किन्तु शुभभाव करने से वह बह
क शुभ निमित्तों को प्राप्त कर सके अथवा अशुभ निमित्तों को दूर कर सक
यात नहीं है । जीव स्वयं अशुभ निमित्तों पर से लक्ष्य को हटाकर शुभ निमित्तों
पर लक्ष्य भनकरे किन्तु निमित्तों को निष्कृष्ट लक्ष्य अथवा दूर करने में वह समर्थ
नहीं है । किसी जावन जिनमदिन अथवा किसी अशुभ घनेस्थान का गिरान्यास
करने का शुभभाव किया इसलिये जीव के भाव के कारण बाध में शिवालय
की क्रिया हुई—यह बात निश्चया है । जीव मात्र निमित्त पर लक्ष्य कर सकता
है अथवा लक्ष्य को छोड़ सकता है ? किन्तु वह निमित्तान्तर पर पदार्थों में कोई
परिवर्तन नहीं कर सकता । वस्तु का ऐसा स्वभाव ही है । इसे समझना मो
भेदज्ञान है ।

११— पंचमहाभूत के कारण चारित्र्य तथा नहीं है शरीर चारित्र्य के
कारण चक्षुत्याग नहीं है ।

त्रिक भावना की निमित्त बीतराग चारित्र्यदाता होती है उसके उस दशा क
होने से पूर्व चारित्र्य का अमीकार करने का विकल्प उठता है । जो विकल्प उठता स
राग है, उसके कारण बीतरागभाव रूप चारित्र्य प्रगट नहीं होता चारित्र्य तो उन्नी
समय की पर्याय के पुरुषार्थ से प्रगट हुआ है ।

चारित्र्यदाता में शरीर की नमन्यता शरीर के कारण होती है । भावना
को चारित्र्य अमीकार करने का विकल्प उठा उसके कारण, अथवा चारित्र्यदाता
प्रगट की इसलिये शरीर पर से दख हट गया एसी बात नहीं है किन्तु उस
समय बर्तों के परमाणुओं की अवस्था में अन्तर्गत होने की वैसी ही
योग्यता की इसलिये ये हट गये हैं । भावना के विकल्प किया इसलिये उसे
विद्वान् के शरीर होकर बखर हट गया—यदि ऐसा हो तो विकल्प वर्ता
हुमा और जो बखर हूँ वह उसका कम हुआ अथवा दोनों इव्य एक हो
गये । इसी प्रकार ऐसा भी नहीं है कि बखर हटना से इसलिये जीव के

विकल्प उग है क्यों कि यदि ऐसा हो तो वस्त्र की पर्याय कर्ता और वह विकल्प उसका कर्म कहलायगा, और इस प्रकार दो द्रव्य एक हो जायेंगे। किन्तु जब स्वभाव के भानपूर्वक चारित्र का विकल्प उठना है और चारित्र ग्रहण करता है तब वस्त्र छूटन का प्रसंग सहज ही उसके कारण से होता है। किन्तु 'मैंने वस्त्रों का त्याग किया मथवा मेरा विकल्प निमित्त हुआ, इसलिये वस्त्र छूट गया एसी मान्यता मिथ्यात्व है'। वीतराग चारित्र से पूर्व पंचमहा भवादि का विकल्प भाव बिना नहीं रहता किन्तु उस विकल्प के माध्य से चारित्र दशा प्रगट नहीं होती।

चारित्र में पंचमहाभत क विकल्प को निमित्त कहा जाता है। निमित्त तो राग है उससे स्वभावोन्मुख नहीं हुआ जाता, किन्तु जब विकल्प को धारकर स्वभाव की ओर उन्मुख होता है तब पूर्व क विकल्प का निमित्त कहा जाता है। पंचमहाभतादि के विकल्प को चारित्र का निमित्त बस कहा जाता है? यदि स्वभाव में लीनता का पुर्याय करके चारित्र दशा प्रगट करे तो विकल्प उसका निमित्त कहा जा सकता है। किन्तु यह मान्यता मिथ्यात्व है कि—यदि पंचमहाभत का विकल्परूप निमित्त बरू तो चारित्र प्रगट हो। एसी प्रकार व्यवहारदर्शन व्यवहारज्ञान, और व्यवहारचारित्र क परिणाम हैं तो उससे निगद्यदशन—ज्ञान—चारित्र प्रगट हो, यह मान्यता भी मिथ्यात्व है।

१०— समय समय की स्वतंत्रता और भेदज्ञान।

यह बात प्रत्येक वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव का है। स्वभाव की स्वतंत्रता का न समझ और यह माने कि 'निमित्त से जाता है' तो वही सम्यक्-प्रज्ञा नहीं है और सम्यक्-श्रद्धा क बिना ज्ञान गया 'नहीं' है 'शास्त्र' का गठन पाठन सच्चा नहीं है, मन सच्च नहीं है, त्याग सच्चा नहीं है। अन्यत्र वस्तु में समय—समय की पर्याय की स्वतंत्रता है। प्रत्येक पदार्थ में उसके कारण से समय—समय की उसी पर्याय की योग्यता से कार्य होता है। पर्याय की योग्यता उपादान कारण है। और उस समय उन कार्य क लिये अनुकूलता जिस पर भा सकता है ऐसी योग्यता का ही दूसरी

बन्धु योग्यत्तर में होती है उसे निमित्त कहा जाना है किन्तु उसका प्रा-
से बन्धु में कुछ नहीं होता। एसी भिन्ना ही यहाँ प्रतीति भूतान है।

भास्मा और प्रत्येक परमाणु की पर्याय स्वतन्त्र है। जीव जो पदम का
विकल्प उठा इसलिये पुरतफ हाथ में भगई एसी बात नहीं भया पुनः
भगई इसलिये विद्वान उठा मो भी नहीं है। इन्ही प्रकार ज्ञान होना का
इसलिये पदमे का विकल्प उठा गया भी नहीं है। और पदम का विकल्प उठा इसलिये
ज्ञान हुआ—सो भी नहीं है। किन्तु प्रत्येक पदम न उसी समय स्वतन्त्रता से
भाना भाना कार्य किया है। वीतरागी भे, विज्ञान यह बताता है कि—प्रतिपदम
प्रत्येक पर्याय भानन स्वतन्त्र उपादान स ही कार्य करती है। परन्तु स्वतन्त्र
पेसा पराग्रीन नहीं है कि निमित्त भाग तो उपादान का कार्य हो किन्तु
उपादान का कार्य स्वतन्त्र होता है तब निमित्त उसकी भवनी योग्यता से होता है।

१३—सूर्य का उदय हुआ इमलिये—ज्या से धूप हो गई, 'य'
घात मिथ्या है।

झाया से धूप होन की परमाणु की प्रवृत्त्या में जिस समय योग्यता
होती है उसी समय धूप होती है और उस समय सूर्य इत्यादि निमित्तत्व
में है। किन्तु यह बात मिथ्या है कि 'सूर्य इत्यादि का निमित्त भिन्ना इसलिये
झाया से धूप हो गई। अथवा झाया में से धूप के रूप में प्रवृत्त्या होनी 'ही
इसलिये सूर्य इत्यादि का भाना पदम—यह बात भी मिथ्या है। सूर्य का उदय
हुआ सो यह उसी उस समय की योग्यता है और जो परमाणु झाया से
धूप के रूप में हुए हैं उनमें उस समय की वही ही योग्यता है।

१४—वज्रज्ञान और वज्ररूपभनाराचरुहन्न-दानों की स्वतन्त्रता।

जब कवलज्ञान होता है तब वज्ररूपभनाराचरुहन्न निमित्त होता है।
किन्तु ऐसा नहीं है कि वह वज्ररूपभनाराचरुहन्न "निमित्तत्व से है इसलिए
केवलज्ञान है। और ऐसा भा नहीं है कि कवलज्ञानाज्ञाना है—इसलिये परमा
धर्म का वज्ररूपभनाराचरुहन्नरूप होना पडा। जो जीव की पर्याय में
केवलज्ञान के पुरकार्य की जाणति होती है वहाँ शरीर के परमाणुओं में

ब्रह्मरूपमनाराचनहननरूप ब्रह्मस्था उसकी योग्यता से होती है । दोनों की योग्यता स्वतंत्र है, किसी के कारण से कोई नहीं है । जब जीव क कबल इन प्राप्त करन की योग्यता हाती है तब शरीर क परमाणुओं में ब्रह्मरूपमनाराचनहननरूप ब्रह्मस्था की ही योग्यता हाती है—एसा मेउ स्वभाव से ही है, कोई एक दूसर क कारण से नहीं है ।

१५—पेट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई, यह बात सच नहीं है ।

कोई मोटर चली जा रही हो और उसकी पेट्रोल का टंकी क फूट जाने से उसमें स पेट्रोल निकल जाये और चउनी हुइ मोटर रुक जाय तो यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि पेट्रोल निकल गया है इसलिये मोटर रुक गई है । जिस समय, मोटर में गतिरूप ब्रह्मस्था की योग्यता हाता है उस समय यह गति करनी है, उस समय पेट्रोल की ब्रह्मस्था मोटर की टंकी के अत्र में रहन की हाती है । किन्तु यह बात मिय्या है कि पेट्रोल है इसलिये मोटर चलती है । मोटर का प्रत्येक परमाणु अपनी स्वतंत्र नियावतीशक्ति की योग्यता से गमन करता है । इसलिये यह बात ठीक नहीं है कि—पेट्रोल निकल गया इसलिये मोटर की गति रुक गई है । जिस क्षेत्र में जिस समय रहन का योग्यता थी उसी क्षेत्र में और उसी समय मोटर रुका है और पेट्रोल के परमाणु भी अपनी योग्यता से अलग हुए हैं । यह बात सच नहीं है कि पेट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई है ।

१६—बागी अपन आप (परमाणुओं से) चोली जाती है, जीव उसका कर्ता नहीं ।

बोलने का विरूप—राग हुमा इसलिये बागी वाली गई—एसा नहीं है, और बागी वाली जाने बागी थी इसलिये विरूप हुमा— एसा भी नहीं है । यदि राग के कारण बागी बागी जाती हो तो राग कता और बागी उसका फल कहलयेगा । और यदि ऐसा हो कि बागी चोली जान बागी थी इसलिये राग हुमा, तो बागी के परमाणु कता और राग उसका फल कहलयेगा । किन्तु

वस्तु योग्यत्व में होती है, उस निमित्त बना जाता है किन्तु उसका धाम
स वस्तु में कुछ नहीं होता। एसी मित्रता की यथार्थ प्रतीति भ्रमण है।

आत्मा और प्रत्येक परमाणु की परस्पर स्वतंत्र है। जीव का पदम का
विकल्प उठा इसलिये पुस्तक हाथ में आगई एसी बात नहीं कल्पना पुस्तक
आगई इसलिये विद्वान् उठा सा भी नहीं है। इसी प्रकार ज्ञान होना व
इसलिये पढ़ने का विद्वान् उठा एसा भी नहीं है। और पदम का विद्वान् उठा इसलिये
ज्ञान हुआ—तो भी नहीं है। किन्तु प्रत्येक दृश्य व उस समय स्वतंत्रता व
मरणा मरणा का विधिया है। वातराग भ्रमिज्ञान यह बताता है कि—प्रतिपक्ष
प्रत्येक पर्याय अपन स्वतंत्र उपादान स ही काय करनी है। परतुम्हण
ऐसा पराधीन नहीं है कि निमित्त आता तो उपादान का काय हो, किन्तु
उपादान का काय स्वतंत्र होता है, तब निमित्त उमदी मरणी योग्यता स क्षता है।

१३—सूर्य का उदय हुआ इसलिये छाया से धूप हो गई, य
घात मिथ्या है।

छाया से धूप होना भी परमाणु की अवस्था में जिस समय योग्यता
होती है उसी समय धूप होती है, और उस समय सूर्य इत्यादि निमित्तत्व
में है। किन्तु यह बात मिथ्या है कि सूर्य इत्यादि का निमित्त मिना इसलिये
छाया से धूप हो गई। अथवा वादा में से धूप के रूप में अवस्था होनी की
इसलिये सूर्य इत्यादि को जाना पना—यह बात भी मिथ्या है। सूर्य का उदय
हुआ सा यह उसरी उस समय की योग्यता है, और जो परमाणु छाया से
धूप के रूप में हुआ है उनही उस समय की वैसी ही योग्यता है।

१४—वज्रजज्ञान और वज्रवृषभनाराचरुहदनन-दोनों की स्वतंत्रता।

वज्र कवचज्ञान ज्ञान है तब वज्रवृषभनाराचरुहदनन निमित्त होता है।
किन्तु एसा नहीं है कि वह वज्रवृषभनाराचरुहदनन निमित्तत्व से है इसलिए
कवचज्ञान है। और एसा भी नहीं है कि कवचज्ञान होना है इसलिये परमा
ज्ञान को वज्रवृषभनाराचरुहदननरूप होना पना। जहाँ पीर की पर्याय में
कवचज्ञान का पुरुषार्थ की जायति होती है वहाँ पीर का परमाणुओं में

वज्ररूपमनाराज्यमहनरूप इवस्था उसकी योग्यता से होती है । दोनों की योग्यता स्वतन्त्र है, किसी के कारण से कोई नहीं है । जब जीव के कवल ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता होती है तब शरीर के परमाणुओं में वज्ररूपमनाराज्य महनरूप इवस्था भी ही योग्यता होती है—ऐसा मेल स्वभाव से ही है, कोई एक दूसरे के कारण से, नहीं है ।

१५—पेट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई, यह बात सच नहीं है ।

कोई मोटर चली जा रही हो और उसकी पेट्रोल बी टकी के फूट जान से उसमें से पेट्रोल निकल जाय और चलती हुई मोटर रुक जाय, तो वही सच नहीं, समझना चाहिये कि पेट्रोल निकल गया है इसलिये मोटर रुक गई है । जिस समय मोटर में गतिरूप इवस्था की योग्यता होता है उस समय वह गति करती है, उस समय पेट्रोल की इवस्था मोटर की टकी के क्षेत्र में रहने की होती है । किन्तु यह बात मिथ्या है कि पेट्रोल है इसलिये मोटर चलती है । मोटर का प्रत्येक परमाणु अपनी-स्वतन्त्र त्रिआवतीशक्ति की योग्यता से गमन करता है । इसलिये यह बात ठीक नहीं है कि—पेट्रोल निकल गया इसलिये मोटर की गति रुक गई है । जिस क्षेत्र में जिस समय रुकने की योग्यता थी उसी क्षेत्र में और उसी समय मोटर रुकी है और पेट्रोल के परमाणु भी अपनी योग्यता से अलग हुए हैं । यह बात सच नहीं है कि पेट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई है ।

१६—बाणी अपने आप (परमाणुओं से) बोली जाती है, जीव उमका कर्ता नहीं ।

बोलने का निरूप-राग हुआ इसलिये बाणी बोली गई—ऐसा नहीं है, और बाणी बोली जाने वाली भी इसलिये विकल्प हुआ— ऐसा भी नहीं है । यदि राग के कारण बाणी बोली जाती हो तो राग कता और बाणी उसका फल कहानगा । और यदि ऐसा हो कि बाणी बोली जाने वाली भी इसलिये राग हुआ, जो बाणी के परमाणु कता और राग उसका फल कलायेगा । किन्तु

त्रिय निमित्त से जैसा होना है वैसा होता ही है, उसमें किंचित्सात्र भी परिवर्तन करने के लिये कोई समर्थ नहीं है—ऐसा ज्ञान में निर्णय करना तो सम्यक् नियतिवाद है, और उस निर्णय में स्वभाव की ओर का ध्यान पुरुषार्थ का होता है। त्रिय ज्ञान यह निर्णय किया कि सभी नियति है उस ज्ञान में यह भी निर्णय हो गया कि किसी भी द्रव्य में कुछ भी परिवर्तन करने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ। इस प्रकार नियत का निर्णय करने पर 'मैं पर का कुछ कर सकता हूँ' ऐसा अहंकार दूर हो गया और ज्ञान पर से उदासीन होकर स्वभावान्मुख हो गया।

अपनी पर्याय भी त्रयबद्ध ही है। उस त्रयबद्धता का निर्णय करने वाला ज्ञान राग के होने पर भी उसका निषेध करके द्रव्यस्वभाव की ओर अनुसृत होना है। जब राग को जानता है तब ज्ञान में ऐसा विचार करता है कि मेरी त्रयबद्ध पर्यायें मेरे द्रव्य में से प्रगट होती हैं, त्रिधात्व-त्रय ही एक के बाद एक पर्याय को प्रकट करता है वह त्रिकाल-द्रव्य रागस्वरूप नहीं है, इत्यलिये वह जो राग हुआ है तो भी मेरा स्वरूप नहीं है और मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। इस प्रकार सम्यक् नियतिवाद का अपने ज्ञान में चित्तने निर्णय किया उस जीव का ज्ञान अपने शुद्ध स्वभाव की ओर अनुसृत होता है और उसके स्वभाव में श्रद्धा ज्ञान होते हैं। वह पर से उदासीन हुआ 'राग का अकर्ता हुआ और पर से तथा विचार से दूर उमड़ी बुद्धि स्वभाव में ही छू गई यह सम्यक् नियतिवाद का फल है। इसमें ज्ञान द्वार पुरुषार्थ की स्वीकृति है। किन्तु जो जीव नियतिवाद का मानता है अर्थात् यह मानता है कि जैसा जाना होगा वैसा होगा, परन्तु नियतिवाद के निर्णय में अपना ज्ञान और पुरुषार्थ माना है उसका स्वीकार नहीं करता अर्थात् स्वभावान्मुख नहीं होता वह मिथ्याचि है, और नियतिवाद गृहीतमिथ्यात्व का भेद है इसलिये यह गृहीतमिथ्याचि है।

२०—सम्यक् नियतिवाद में, पुरुषार्थ इत्यादि पाँचों ममवाय एक साथ है। जो मज्जानी यथाय निर्णय नहीं कर सकते उन्हें एसा लगता है कि यह तो एकात्म नियतिवाद है। किन्तु इस नियतिवाद का यथाय निर्णय करने

पर अपने केंद्रस्थान का निर्णय हो जाता है। शुरु, दिव्य, सांख्य इत्यादि सभ्यता पदार्थों की जिस समय-तो योमता होती है वही पथाय होती है। ऐसा नियम किया कि स्वयं उसका होता रह गया जनन में विरल्य नहीं है। अस्थिरता का जो विरल्य उद्यता है उसका क्या नहीं है। इस प्रकार प्रकृत पथाय की श्रद्धा होने पर प्रकृति होने पर राग का कर्तव्य उद्य जाता है। ऐसे सम्बद्ध नियतिवाद की श्रद्धा में ही पाँचों समवाय एक साथ समा जाते हैं। पहल तो स्वभाव का ज्ञान और श्रद्धा की सां पुण्याय उसी समय जो निमित्त प्रथाय प्रकृत होती नियत थी तो वही पथाय प्रकृति है—वह नियति, उस समय का पथाय प्रकृत हुई। वही स्वभाव और जो पथाय प्रकृत हुई वह स्वभाव में थी—वही प्रकृत हुई है। इसीसे वह स्वभाव और उस समय पुत्रलक्ष्य का स्वयं प्रभाव होता है तो उस प्रभाव का निमित्त एवं सद्गुरु इत्यादि हो तो व स्वभाव रूप निमित्त है। प्रकृत पथाय ही होती है। इसी श्रद्धा करने पर प्रथाय सम्बद्ध नियतिवाद का निमित्त करने पर जीव जगत् का छापी हो जाता है। इसमें स्वभाव का प्रकृत पुण्याय समा जाता है यह प्रकृत का मूलमूल रहस्य है।

२१— सम्बद्ध नियतिवाद और मिथ्या नियतिवाद

गोनट्यार कर्मकाण्ड की ८८२ वीं गाथा में जिस नियतिवादी जीव को गृहीतमिथ्या छि कहा है वह जीव तो नियतिवाद की बात करता है—किन्तु अपने ज्ञान में ज्ञाता-दृष्टान्त का पुण्याय नहीं करता। यदि सम्बद्ध नियतिवाद का पथाय निर्णय करे तो उसमें स्वभाव के ज्ञाता-दृष्टान्त का पुण्याय भी जाता है। किन्तु वह जीव तो मात्र परलक्ष से ही नियतिवाद को मान रहा है और नियतिवाद के निमित्त में अपना जो ज्ञान और पुण्याय काय करता है उसे वह स्वीकार नहीं करता। इसीसे वह जीव 'मिथ्यानि निर्णयी' है। और उसी को गृहीतमिथ्यात्वी कहा है। नियतिवाद का सम्बद्ध निमित्त गृहीत एवं गृहीत मिथ्यात्व का नारा करने वाला है। सम्बद्ध नियतिवाद कहे या स्वभाव कहे, उसमें उस प्रत्येक समय की पथाय की स्वतंत्रता सिद्ध हो

जानी है। यदि इस न्याय को जीव बराबर समझे तो उपादान निमित्त सम्बन्धी सभी सम्बन्ध दूर हो जाये। क्योंकि कि जिस वस्तु में जिस समय जो पर्यय होती है वही होता है तो फिर 'असुख निमित्त चाहिये अथवा असुख निमित्त के दिन न। हो खरती' भी बात को असुख ही कहें है? सम्बन्ध निमित्त का निर्णय करने में पुण्याथ जाना है, सभी अज्ञान-ज्ञान धारें करता है। स्वाध में सुद्धि कस्ती है- तथापि उम सखो जो जीव की मानता और नियन्त्रित की बात करता है उन जीव को ऐकान्तिक प्रतिनिधित्व प्रकृत गदा है। किन्तु जो जीव नियन्त्रित को मानकर पर क और राग क कर्तव्य का अभाव करता है तथा ज्ञान-ज्ञान का सारी भाव प्रकट करता है, वह जीव अन्त पुण्याथी सम्बन्धित है।

२२- कौन कहता है कि सम्बन्ध निमित्तान् गृहीतमिन्द्रियाल है?

सम्बन्ध निमित्तान् गृहीतमिन्द्रियाल नहीं, किन्तु अज्ञान का कारण है। या एस सम्बन्ध निमित्तान् को एसात मिन्द्रियाल कहते है उन्होंने इस बात को अर्थपूर्ण समझा तो क्या किन्तु भी भीति मुक्त तब नहीं है। 'समस्त परमों में ज्ञान होना होता है वसा ही क्षान्त है।' यह नियम बता पर एत पर्याय जो ही एतद्विद्या की और सम्बन्धमान होती है अज्ञान इन्द्रिय हो जाती है, अज्ञान पर जो और अज्ञान को अज्ञान पर्यायनाथ तब ही त ज्ञान किन्तु एतदी मान दिया। अज्ञान का अज्ञान स्वभाव सुद्ध राग गीन है अज्ञान पर जीव राग का अज्ञान हुआ और पर पर्याय का अज्ञान की मानता अज्ञान उन पर्यायों में एतदी अज्ञान की पर्याय का अज्ञान निमित्त है, तदनुगत ही उपादान स्वभाव, स्वतंत्रता होती है।

इस प्रकार सम्बन्ध निमित्तान् के निर्णय में अज्ञान की प्रतीति हुई। अज्ञान अज्ञान का अज्ञान अज्ञान है और अज्ञानाथ सुद्ध है एतदी प्रतीति के भाव जो क्षान्त हो तो क्षान्त है। इस प्रकार जो मानता है जो अज्ञान की प्रतीति है। अज्ञान निमित्तान् की प्रतीति का अज्ञान है।

नियतिवाद के दो प्रकार हैं—एक गम्यक नियतिवाद और दूसरा मिथ्या नियतिवाद । गम्यक नियतिवाद वास्तविकता का अर्थ है उसका स्वभाव ऊपर बताया है । यदि जीव इस प्रकार नियतिवाद को मानता तो वह निश्चय ही जानता है कि 'जानना ही जानना है' किन्तु परम ज्ञान और परमात्मता का दृष्टिकोण स्वभावो मुक्त नहीं जानता । जो नियतिवाद का सिद्धय करनेवाला अथवा इन और पुरुषात्मा का स्वतंत्रता को स्वीकार न करे परन्तु और विकार के कर्तृत्व के अभिमान का न छोड़—इस प्रकार पुरुषात्मा को उदाहरण स्वच्छन्दता में प्रतिबन्धित कर—उस शरीरमिथ्यादृष्टि कहा है ।

जानना ही जानना है इस प्रकार मात्र परमाणु से जाना है या यथायत्न ही है । जानना ही जानना है यदि ऐसा यथायत्न निगम हो तो जीव का ज्ञान परम के प्रति उदासीन होकर अथवा स्वभाव की ओर झुक जाय और उस ज्ञान में यथायत्न प्रतिबन्धित हो जाय । उक्त अर्थ के साथ ही पुरुष से निश्चय ज्ञान रक्षण और धर्म—यह दोनों समवाय आजात है ।

२३—मिथ्या नियतिवाद का उपासक ।

प्रश्न—मिथ्या नियतिवाद जीव भी जब परमाणु सिद्ध होता है प्रत्यक्ष नष्ट हो जाती है तब यह मानकर शक्ति तो रहता ही है कि 'जानना ही जानना है' तब फिर उसके गम्यक नियतिवाद का निगम क्या न माना जाय ?

उत्तर—यह जानने शक्ति रहता है तो यथायत्न ही है किन्तु मन्द क्यावत्तव जति है । यदि नियतिवाद का यथायत्न निगम ही तो निश्चय प्रकार उक्त एक पदार्थ का ज्ञान जानना या मं हुमा उक्त प्रकार समान पदार्थों का ज्ञान होना ही ही जानना है—एक भाग्य ज्ञान शक्ति । और यदि ऐसा ही तो फिर यह सब माया ही दूर हो जाती है कि मैं परद्रव्य का निमित्त होऊँ तो उसका कार्य ही निमित्त ही तो ही काय होता है किसी समय निमित्त की प्रकृति होती है । 'सर्व नियत है' अर्थात् जिस कार्य में समय, जिस निमित्त की उपस्थिति रहनी ही उस कार्य में, उस समय,

यह निमित्त स्वयमेव हाता ही है । तब फिर एनी मान्यताओं को प्रवृत्ता ही
 कही रहता कि 'निमित्त मिलाना चाहिये,' अथवा निमित्त की उपेक्षा नहीं
 की जा सकती अथवा निमित्त न हा तो बाय नहीं होता । यदि सम्यक्
 नियतिवाद का नियम हा ता निमित्ताधीनदृष्टि दूर हो जाती है ।

२४—मिथ्यानियतिवाद की 'गृहीत' मिथ्यात्व क्यों कहा है ?

प्रश्न—मिथ्यानियतिवाद का उदात्तमिथ्यात्व क्यों कहा है ?

उत्तर—निमित्त से घम हाता है राग से धर्म हाता है, शरारति का
 भावना बुद्ध कर सक्ता है एनी मान्यता के रूप में अर्थात् मिथ्यात्व अनादि
 काल सन्निवृत्त था । और जन्म के बाद शत्रुओं का पत्कर अथवा पुत्रु इत्यादि
 क निमित्त से मिथ्या-नियतिवाद का नवान बदाग्रह प्रवृत्त किया, इत्ययि
 उस उदात्तमिथ्यात्व कहा जाता है । पहल विमे अनादिकाधीन अर्थात् मिथ्यात्व
 हाता है, उसी को गृहीतमिथ्यात्व हाता है । जान इन्द्रिय-विपर्या का पुष्टि के
 निय 'जा हाता होगा सो होगा' गमा नृत्तर साता में गति हाता की
 भावना से एक स्वच्छन्दता का भागि हाता निहालत है उसना नाम गृहीत
 मिथ्यात्व है और यह सम्यक् नियतिवाद स्वभावभाज है, स्वात्त्रता है,
 वातगता है ।

२५—सम्यक नियतिवाद क नियम से निमित्ताधीनदृष्टि श्रार स्व-
 पर की एकत्व-बुद्धि-दूर हो जाती है ।

जिस वस्तु में जिस समय जकी पर्याय हाती हो और जिस निमित्त की
 उपस्थिति न हाता हो, उस वस्तु में उस समय वग्ने पर्याय हाता ही है और
 क निमित्त ही उग समय हाता है । तो उसी पर्याय हाती है और न
 दूसरा निमित्त हाता है । इस नियम का तीन लोका और तीग काग में वाई
 परियतन नहीं हाता । यही यथाय त्रिनि का निर्णय है इसम आत्म-मन्त्रगाव
 क अक्षा, ज्ञान, चारित्र भागात है, और निमित्त के ऊपर की दृष्टि दूर हो जाती
 है । त्रिपदी एका- 'मैं पर का कता तो नहीं है, किन्तु मैं

पर का निमित्त हाके' यह सिद्धांति ७ । मयं निमित्त है इत्यदि पर ध
 काय होता है-एनी का नही है किन्तु प्रत्युत वस्तु में उगरी योग्यता
 का कार्य होता है उसमें मय वस्तु का निमित्त कहा जात है । 'मै
 निमित्त हाके' इसका मय यह हुआ कि वस्तु म काय गी हात वा वस्तु
 में निमित्त हुआ तब उसमें कार्य हुआ, मय तब यह तो स्व-पर की लक्ष्य
 बुद्धि का है ।

२६— लकड़ी अपन काप ऊंची उठती है, हाथ क निमित्त से उठी ।

यह लकड़ी के समें ऊपर उठन की योग्यता है किन्तु जब मोग
 हाथ उसे मय करता / तब यह उठता है मय तब मय तब हाथ उठक
 त्रिय निमित्त होता है तब यह उठती है । मय मान का जीव वस्तु की
 पयाय का वस्तु गी मानत मय तब उठता है मय वस्तु क
 स्वभाव का ही नही मानत मय त्रिय निमित्त है । तब लकड़ी उठत नही
 उठती तब उसमें ऊपर उठन की योग्यता ही गी है और जब हाथ
 योग्यता होत है तब यह मय ऊपर उठती है व हाथ क निमित्त से
 ऊपर नगी उठती है तु जब वह ऊपर उठती है तब हाथ इत्यदि निमित्त
 स्वयमेव होत ही है । मय प्रकार वस्तु निमित्त का मय का मय से ही
 होता है । निमित्त का मय करता क त्रिय की कदन का मय इत्यदि है
 कि 'हाथ क निमित्त से लकड़ी ऊपर उठी है ।'

२७— छादचुम्बक सुई का गी रीचता ।

छादचुम्बक की ओर लोह की सुई त्रियी है परों लोहचुम्बक उर को
 नही रीचता किन्तु सुई मयनी योग्यता से ही मयन करती है ।

प्रश्न—यदि सुई मयनी योग्यता से ही मयन करती है तब ऊपर लोह
 चुम्बक उठक पास नही था तब उसने मयन क्यों नही किया ? और जब
 लोहचुम्बक निमय मया तभी क्यों मयन किया ?

उत्तर—पहला उर में मयन करन की योग्यता ही नही थी इत्यदि उर
 समय लोहचुम्बक उठक पास (सुई को रीचन योग्य मय में) हो ही नही

घटा। और जब सुई में क्षेत्रान्तर करने की योग्यता होती है तब लोह-
 चुम्बक और उसके बीच अंतराय हो ही नहीं सकता। ऐसा ही उपादान
 निमित्त का मन्व है कि दोनों का मेल होता है। तथापि एक दूसरे के
 कारण स क्रिया की क्रिया नहीं होती। सुई की गमन करने की योग्यता
 हुई इसलिये लोहचुम्बक निरुद्ध प्राया—यह बात नहीं है, और लोहचुम्बक निरुद्ध
 प्राया इसलिये मुक्त स्थिति ऐसा भी नहीं है, किन्तु जब सुई की क्षेत्रान्तर होने
 की योग्यता होती है, उन्ही समय लोहचुम्बक में उक्त क्षेत्र में ही रहने की
 योग्यता होती है—इसी का नाम निमित्त-निमित्तिक सम्बन्ध है।

२८—निमित्तपन की योग्यता।

प्रश्न—जब कि लोहचुम्बक सुई में चुम्ब भी नहीं करता तो फिर
 उन्ही को निमित्त क्यों कहा है? अन्य सामान्य पत्थर को निमित्त क्यों नहीं
 कहा? जैसे लोहचुम्बक सुई में चुम्ब नहीं करता तथापि वह निमित्त वह
 जाता है, तब फिर लोहचुम्बक की भाँति अन्य पत्थर भी सुई में चुम्ब नहीं
 करते तथापि उन्हें निमित्त क्यों नहीं कहा जाता?

उत्तर—उक्त समय उस कार्य के लिये लोहचुम्बक पत्थर में ही निमित्तपन
 की योग्यता है, अर्थात् उपादान के कार्य के लिये अनुकूलता का आरोप
 की जाने योग्य योग्यता लोहचुम्बक की उस समय की पर्याय में है, दूसरे
 पत्थर में वैसी योग्यता उस समय नहीं है। जैसे सुई में उपादानता की
 योग्यता है इसलिये वह स्थिति है इसी प्रकार उन्ही समय लोहचुम्बक में
 निमित्तपन की योग्यता है, इसलिये उसे निमित्त कहा जाता है। एक समय
 की उपादान की योग्यता उपादान में है, और एक समय की निमित्त की
 योग्यता निमित्त में है, किन्तु दोनों की योग्यता का मेल है इसलिये अनु-
 कूल निमित्त कहा जाता है। लोहचुम्बक में निमित्तपन की जो योग्यता है उसे
 अन्य समस्त पदार्थों से पृथक् करके पहचानने के लिये 'निमित्त'
 कहा जाता है किन्तु उक्त कारण से सुई में विशेषता नहीं होती।
 जब उपादान में कार्य होता है तब अथवा उसे आरोप से दूसरे पदार्थ का

निमित्त कहा जाता है। इसका स्वभाव स्वपर-प्रकारक है। इसमें वह उपादान और निमित्त दोनों का जानना है।

२६—निमित्त का स्वरूप सम्प्रत्यक्ष ही धर्मास्तिकाय का रहना।

सभी निमित्त धर्मास्तिकाय है (यथा इष्टावशेन गम्य ३१) धर्मनिर्वाहय एवाथ लोक म गम्य है। जब वस्तु अपनी योग्यता मर्यादी है तब धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है और जब वस्तु पूरी कठकी तो उस निमित्त नहीं कहा जाता। धर्मास्तिकाय की भाँति ही गम्यत निमित्तों का स्वभाव समझना चाहिए। धर्मास्तिकाय में निमित्तजन की पूर्ण योग्यता है कि पदाव गति करके ही तब उड़ी में उस निमित्त कहा जाता है किन्तु निमित्त कर्मान की योग्यता ही धर्मास्तिकाय में है।

३७—मिद्ध भगवान् अज्ञात म क्या कहा जाना ?

मिद्ध भगवान् अपनी क्षत्रांतर की शक्तता म जब तक समर्थ में लोकांग म गमन करत है तब धर्मनिर्वाहय का निमित्त कहा जाता है परंतु कहीं धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण जाग मर्याक म गमन नहीं होता ऐसी बात नहीं है। व लोकांग में निमित्त बात है मा वह भी उनकी ही वही योग्यता उक्त कारण से ही उस समय धर्मास्तिकाय का निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न—मिद्ध भगवान् लोकांगारा क बाहर गमन क्या नहीं करते ?

उत्तर—उक्त योग्यता ही ऐसी है क्योंकि वह लोक का स्वयं है और उनकी योग्यता लोक क अंत तक ही जान भी है। लोकांगारा से बाहर जान की उक्त योग्यता ही नहीं है। अज्ञात म धर्मास्तिकाय का अभाव है इसमें मिद्ध कहा गमन नहीं करते (धर्मास्तिकायाभावात्) यह मात्र अज्ञानकारण का कथन है अज्ञात उपादान में स्वयं अज्ञातकारण में जान की योग्यता नहीं होती तब निमित्त भी नहीं होता एसा उपादान निमित्त का भेद बताते हैं कि वह वस्तु है।

३१—प्रत्येक पदार्थ का कार्य स्वतंत्र है ।

श्रीगुरुजी न धूपन मुनाम को पत्र दिना कि पाँच हजार रुपया वेर में जमा करा जना और मुनीम न वेर में रुपया जमा करा दिया । यहाँ पर जीव न पत्र लिखन का विवरण किया इसलिये पत्र दिया गया ऐसी बात नहीं है और ऐसा भी नहीं है कि पत्र भाया इसलिये मुनाम क वेर में जमा करान का विवरण हुआ तथा ऐसा भी नहीं है कि मुनाम क विवरण लगा इसलिये वेर में रुपया जमा हुआ । इसी प्रकार रुपया वेर में जमा जना के इसलिये मुनीम क मन में विचार उठा—जमा भी नही है इसी प्रकार प्रत्येक में साफ जना चाहिये । इस प्रकार जीव का विवरण स्वतंत्र है जब मुनीम का विवरण उठा तब पत्र निमित्त कहताया, तथा धन में जान को रुपयों की भरपूर हुई तब मुनाम क विवरण का उमका निमित्त कहा गया ।

३०—निमित्त क कारण उपादान में मिलनया मशा नहीं होनी ।

प्रश्न—उपादान में निमित्त कुछ नहीं करता यह बात सच है, किन्तु जब निमित्त होता है तब उपादान में विलक्षण अवस्था तो होनी ही चाहिये । जैसे 'अग्निरूपी' निमित्त क आने पर पानी को उष्ण होना ही चाहिये ।

उत्तर—यह बात मिस्या है जिस पानी की पर्याय का स्वभाव उसी समय गम होने का था वही पानी उसी अग्नि के संयोग में आया और अपना योग्यता में स्वय ही गर्म हुआ है, अग्नि के कारण उसे विलक्षण होना पडा हा सो बात नहीं है और अग्नि ने पानी को गम नहीं किया है ।

३२—मिश्रणादृष्टि संयोग को दरपता है, और सम्यक्दृष्टि स्वभाव को दरपता है ।

“अग्नि से पानी गर्म हुआ है”—ऐसी जो मान्यता है सो संयोगाधीन पराधीनदृष्टि है और पानी अपनी योग्यता से ही गर्म हुआ है—ऐसी जो मान्यता है सा स्वतंत्र स्वभावदृष्टि है । जो संयोगाधीनदृष्टि है सो सम्यक्दृष्टि है ।

मिथ्यादि नौव वस्तु के स्वभाव की सम्यक् सम्यक् की योग्यता में प्रत्येक काय होता है उस स्वभाव की नहीं उगता किन्तु निमित्त व समय की श्रेयता है यही उसकी परासीति है । और उस दृष्टि में ही ही पर का एकत्र-बुद्धि हर नहीं होती । सम्यक्दि ही स्वतंत्र वस्तुव्यवस्था का देवता है कि प्रत्येक वस्तु की समय समय की योग्यता से ही उसके कार्य स्वाप्रता से होता है ।

३४—उपादान और निमित्त दोनों की स्वतंत्र योग्यता ।

(वस्त्र और अग्नि)

वस्त्र में जिस समय जिस क्षण में, जिस समय में जलन की योग्यता होती है उस समय उस क्षण में उस समय में उसकी जलन की पर्याप्त होती है और अग्नि उस समय स्वयं ही होती है । अग्नि आई इतनी वह जल गया ऐसी बात नहीं है और एसा भी नहीं है कि वस्त्र में जल जाय की अवस्था होन की योग्यता हो किन्तु अग्नि या दूसरा योग्य संयोग । जिस ता वह अवस्था एक जाती है । जिस समय योग्यता होती है उस समय वह अवस्था बनता है और उस समय अग्नि भी उपरिगत होती है तथापि अग्नि की उपस्थिति के कारण वस्त्र की अवस्था में ही निरक्षयता नहीं होता । यह मान्यता निम्न है कि अग्नि न वस्त्र व जला दिया है ।

यदि कोई पूछे कि-वस्त्र के जलते समय अमुक ही अग्नि की ही दूसरी अग्नि नहीं थी इतना क्या कारण है? उनका उत्तर यह है । उस समय जो अग्नि थी उसी अग्नि में निमित्तता की योग्यता की दूसरी अग्नि ही ही नहीं सञ्ची क्यों कि उसमें निमित्तता की योग्यता ही नहीं थी उपादान के समय जिस निमित्त की योग्यता होती है वही निमित्त ही है दूसरा ही ही नहीं सञ्ची । सबकी अपने कारण से अपनी अवस्था रही है । वही अपनी यह मानता है कि- ' यह निमित्त से हुआ है अपने निमित्त ने किया है ।

२५—पापान और निमित्त दोनों की स्वतंत्र योग्यता ।

(आत्मा और कर्म)

आत्मा अपनी पर्याय में जब राग-द्वेष करता है तब कर्म के विना परमाणुओं की योग्यता होती है वे उदयरूप हात हैं कर्म न हो एका नहीं हो सकता किंतु कर्म उदय में आया इमलिय जीव के राग द्वेष हुआ यह मन्वन्ता है । और रागद्वेष किया इमलिय कर्म आया यह मन्वन्ता है । जीव के अपने पुरुषार्थ की प्रसक्ति से रागद्वेष होने की दम्यता की इमलिय राग-द्वेष हुये हैं और उस समय विन कर्मों में उदय कर्म उदय में आये हैं और उन्हीं को निमित्त कहा जाता है कि उदय कर्म के कारण जीव की पर्याय में रागद्वेष या विलक्षणता उत्पन्न हुई है ।

जब ज्ञान की पर्याय अपूर्ण हो तब ज्ञानारण कर्म में ही योग्यता है । जीव की पर्याय में जब जीव मोह हुआ है तब उदय कर्म ही निमित्त कहा जाता है ऐसी उन कर्मपरमाणुओं में योग्यता है । ऐसे उपादान में प्रतिसमय स्वतंत्र योग्यता है उसी प्रकार उदय कर्म में माहकर्म के प्रत्येक परमाणु में समय-समय की योग्यता है ।

प्रश्न—क्या यह सच नहीं है कि जीव ने रागद्वेष किया, इमलिय परमाणुओं में कर्म अवस्था हुई है ?

उत्तर—नहीं अमुक परमाणु ही कर्मरूप हुआ है । ज्ञान के दूसरे परमाणु क्यों नहीं हुए ?—इसलिये विन विन परमाणु में योग्यता की वही परमाणु कर्मरूप परिणत हुए हैं । वे आत्मा के ही कर्मरूप हुये हैं जीव के रागद्वेष के कारण नहीं ।

२६—परमुरापापनी नहीं होना है, किन्तु ज्ञान पर ही उदयना है ।

प्रश्न—जब परमाणुओं में कर्मरूप हुआ है, तब ज्ञान की वही योग्यता को रागद्वेष करना ही चाहिये, क्यों कि परमाणु में कर्मरूप होने का कारण है, इसलिये वही जीव के विकाररूप किन्तु ज्ञान ही योग्यता की वही है ?

उत्तर— यह प्रश्न ही ज्ञानी का है। तुम अपने स्वभाव में दर्शन का काम ठीक या परमाणु में वचन का ? जिसकी दृष्टि स्वतंत्र ही गई है वह आत्मा का और वचना है और जिसकी दृष्टि निमित्ताधीन है वह परसुरापत्ता होता है। जिसने यह ज्ञान निर्णय किया है कि 'जब जिस वस्तु की जा व्यवस्था होनी हो वही जानी है,' उसके दृश्यदृष्टि होती है— स्वभावदृष्टि होती है। उसकी स्वभावदृष्टि में तीव्रतागति होती ही नहीं, और उस जीव के निमित्त से तीव्रमूर्तरूप परिणमित होने की योग्यता बाल परमाणु ही इस जगत् में नहीं होने। जीव न अपने स्वभाव के पुरुषार्थ से सम्यक्दर्शन प्रगट किया वहां उस जीव के निमित्त मिथ्यात्वादि कर्मरूप से परिणमित होने की योग्यता विश्व के किसी परमाणु में होती ही नहीं है। सम्यक्दृष्टि के जो अल्प साक्ष्य है वह ज्ञानी ज्ञेयमान पदार्थ की योग्यता से है उस समय अल्पकर्मरूप में वचन का परमाणु की पथाय में योग्यता है। इस प्रकार स्वतंत्र से प्रारम्भ करना है।

'जगत् के परमाणुओं में मिथ्यात्वादि कर्मरूप होने की योग्यता है उनिये जीव के मिथ्यात्व के भाव जाना ही चाहिये। जिसकी जगत् मायना है वह जीव स्वतंत्र के स्वभाव से नहीं जानना और इसलिये उस जीव के निमित्त से मिथ्यात्वादि परिणमित होने योग्य परमाणु जगत् में विद्यमान हैं ऐसा जानना चाहिये। किन्तु स्वभावदृष्टि में दर्शने वाले जीव के मिथ्यात्व होता ही नहीं और उस जीव के निमित्त से मिथ्यात्वादिरूप परिणमित होने की योग्यता ही जगत् किसी परमाणु में नहीं होती। स्वभावदृष्टि से ज्ञानी विचार के अर्थात् हो गये हैं इसलिये यह बात ही मिथ्या है कि ज्ञानी को विचार करना पड़ता है। जो अविचार होता है तो भी स्वभावदृष्टि के अर्थ से पुरुषार्थ के द्वारा प्रेरित होता जाता है। ऐसी स्वतंत्र स्वभावदृष्टि (सम्यक्-अज्ञा) निमित्त ज्ञानी जीव का कुछ शुभपरमरूप मत, तप त्याग करता है वह सब अज्ञानोत्पन्न 'क समान मिथ्या है।

१७— 'कूक से पतंग को उड़ान की बात'।

शंका— वस्तु में जो जो पर्याय जानी जाती है सो ही होती है और

जो निमित्त प्रसङ्ग होता है, किन्तु निमित्त कुछ नहीं करता और निमित्त के लिये कोई कार्य नहीं होता ' यह ना फूंक से परत को उठाने जैसी बात है ?

समाधान— नहीं, यहाँ फूंक से परत का उठाने की बात नहीं है। परत के अन्त परमाणुओं में उड़ने का योग्यता हो तो परत अपने को उठाने के लिये फूंक ही भी आवश्यक नहीं होता। यहाँ किसी कर्म में यह दास्यता है कि ' अरे यह कैसी बात है ! क्या जान भा मान आप उठते हाग ? ' किन्तु भाई ! वस्तु में जो काम होना (जो पराश्रय होती है) वह उसी अपनी ही शक्ति से योग्यता में होती है। वस्तु की शक्ति का अर्थ ही अपेक्षा नहीं रहती। परवस्तु का उसमें उठाने का क्या करे ?

५—उदासीन निमित्त और प्रेरक निमित्त।

प्रश्न—निमित्त के दो प्रकार हैं—एक उदासीन दूसरा प्रेरक। इनमें से उदासीन निमित्त कुछ नहीं करता, किन्तु प्रेरक निमित्त तो उपादान का कुछ करना है ?

उत्तर—निमित्त के भिन्न भिन्न प्रकार यथागत के लिये यह दास्यता है जो उनमें से कोई भी निमित्त उपादान में कुछ भी नहीं करता अपेक्षा के कारण से उपादान में कोई विलक्षणता नहीं आती। प्रेरक निमित्त प्रेरण नहीं करता। सभी निमित्त घमास्तिकायन्त हैं।

प्रश्न—प्रेरक निमित्त और उपादान निमित्त का क्या परिभाषा है ?

उत्तर—उपादान की अपेक्षा से तो दोनों पर ' दोनो अनिच्छितक हैं, ' अर्थात् दोनों समान हैं। निमित्त की अपेक्षा से यह दास्यता है। जो निमित्त यच्छावान या गतिमान होता है वह प्रेरक निमित्त कहलाता है। और जो निमित्त स्वयं स्थिर या अकारिण होता है, वह उदासीन निमित्त कहलाता है। उदाहरण जीव और गतिमान अजीव प्रेरक निमित्त है और अकारिण अजीव उदासीन निमित्त है। परंतु दोनों प्रकार के निमित्त

पर में विपुल कार्य नहीं करत। जब घटा बाला है तब उसमें पुन्हर और धाक प्रक निमित्त है तथा धमणित्वाद्य इत्यादि उदात्तन निमित्त है।

यह बात सच नहीं है कि भगवान् मन्थार क समवसरण में गौतम गणधर के भ्रान से सि यत्रनि पितरी। और पहल ६६ दिन तक उनके न् भ्रान से भगवान् की ध्वनि गिरने सं रही रही। घाणी क परमाणुओं में त्रिस समय बाणीरूप से परिणमिता हां की योग्यता थी उस समय ही व घाणीरूप में परिणमित हुय और उस समय वही गणधरद्व की प्रवरद- भावी उपस्थिति थी। गणधर भाव इत्यनिय घाणी सूत्री एसी बात नहीं है। गणधर जिस समय भाव उमी समय उनका भ्रान की योग्यता थी। ऐसा ही सहज निमित्त-निमित्तक सम्बन्ध है। इत्यनिय इग तम् को व्यवहार ही नहीं है कि यदि गौतम गणधर न भाव होत ता वही कैस सूत्री ?

३६—निमित्त न हा ता ?

काय जाना हा और निमित्त न हो तो ? ' एमी रसा करने बाध से ज्ञानी पृक्त है कि 'ह भाई इम जगत में तू जीव ही न होना तो ? भयवा तू भ्रान्त हाता तो ?' तब तकाहार उगर देता है कि— 'मैं जाव ही हू इत्यनिय दूसर तर्क का स्थान नहीं है।' तब ज्ञानी कहते हैं कि— 'जस तू स्वभाव से ही जीव है इत्यनिय उममें दूसरे तक का स्थान नहीं है।' इसी प्रकार 'जब उपादान में कार्य होता है तब निमित्त उपस्थित ही है। ऐसा ही उपादान-निमित्त का स्वभाव है इत्यनिय उसमें दूसर तक को भव काय नहीं है।

४०—कमल म त्रिकमित्त हानका योग्यता हा किन्तु यदि सूर्यादिय न हो तो ?

कमल क गिलन और सूर्य क उदय गम में सहज निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है किन्तु सूर्य का उदय हुआ इत्यनिय कमल नहीं पित्त है व तो अपनी उस पथाय की योग्यता से पित्त है।

प्रश्न—यदि सूर्योदय न हा तब ता कमल नहीं पित्तगा ?

उत्तर—'काय होना हो किन्तु निमित्त न हो तो ?' ऐसा ही यह प्रश्न है, इसमें समानान उपरोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिये। जब कमल में चिलन की योग्यता होती है तब सूर्य में भी अपने ही कारण से प्रतिबिम्बित होना ही योग्यता होती है—ऐसा स्वभाव है। कमल में विरहित होना ही योग्यता हो और सूर्य में उदित होने की योग्यता न हो सकती हो ही नहीं सकता। तथापि सूर्य के निमित्त से कमल नहीं खिलता, और कमल चिलना है इसलिये सूर्य उदय होता है—ऐसा भी नहीं है।

४१—जब सूर्योदय होता है तभी कमल खिलता है, इसका क्या कारण है ?

प्रश्न—यदि सूर्य के निमित्त से कमल न खिलता हो तो इसका क्या कारण है कि जब सूर्योदय वह बजे होता है तब कमल भी उदय न खिलता है, और जब सूर्योदय सात बजे होता है तब कमल भी सात बजे खिलता है ?

उत्तर—उसी समय कमल में चिलन की योग्यता है, इसलिये वह तभी खिलता है। पहले उसमें अपने में ही खिलने की योग्यता नहीं थी, और उसकी योग्यता बाद गहने की ही थी। एक समय में दो विरुद्ध प्रकार की प्रत्ययों की योग्यता नहीं हो सकती।

४२—यह जैनदर्शन का मूल रहस्य है।

बन्धुत्वभाव स्वतंत्र, निरपेक्ष है इस स्वभाव को जगतक न जानने से तत्काल जीव को पर के अधिकार से सच्ची उत्पत्ति नहीं होती, यह विकार का स्वामी नहीं मित्रता और अपना प्रयाय का स्वामी (आधार) जो आत्म स्वभाव है उसकी दृष्टि नहीं होती। यह स्वतंत्रता जैनदर्शन का मूल रहस्य है।

४३—एक परमाणु की स्वतंत्र शक्ति।

प्रत्येक जीव तथा अजीव द्रव्यों की प्रयाय स्वतंत्रतया अपने से ही होती है। एक परमाणु भी अपनी ही शक्ति से परिणमित होता है उसमें निमित्त का क्या प्रयोजन है ? एक परमाणु पहल समय में जाता होता है और दूसरे समय में सफर हो जाता है, तथा पहल समय में एक भद्र वाता और

दूसरे समय में आतमुना भला हो जाता है। इसमें निमित्त-निमित्त काग ?
बहुत ता अपनी योग्यता से परिणमित होता है।

४४— इन्द्रियो शरीर ज्ञान का स्वरूप परिणामन निमित्त-निमित्तक
समय का स्वरूप ।

यह बात निश्चय है कि जन्म इन्द्रिया है इसलिये आत्मा को ज्ञान होता
है। आत्मा का प्रकृत सामान्य ज्ञानसम्पाद्य अपने कारण से प्रसिद्ध
परिणमित होता है और जिस पर्याय में जन्मी योग्यता होता है उतना ही
ज्ञान का प्रकृत होता है। पञ्चद्रव्य सम्बन्धी ज्ञान का विकास है इसलिये
ज्ञान का विकास है—एसा भी नहीं है। ज्ञान की पर्याय में जितनी योग्यता भी
उतना विकास हुआ है और जिस परमाणुओं में इन्द्रियरूप होने की
योग्यता भी वह स्वयं इन्द्रियरूप में परिणमित हुआ है। तथापि ज्ञान का
निमित्त-निमित्तक भेद है। जिस शरीर के एकद्रव्य के ज्ञान का विकास होता
है उसमें एक ही इन्द्रिय होती है दो चाल के दो तीनचाल के तीन चार
चाल के चार और पञ्चद्रव्य के विकास चाल के पाँचों ही इन्द्रियाँ होती हैं।
बहुत ज्ञान का स्वरूप परिणामन है एक कारण दूसरे में कुछ नहीं हुआ
है इसी को निमित्त-निमित्तक समझ सकते हैं।

४५— रागद्वेष का कारण कौन है ? सम्यक्प्रतिष्ठ पर रागद्वेष क्यों
होता है ?

प्रश्न—यदि कम आत्मा को विकार न कराता हो तो आत्मा में विकार
होने का कारण कौन है ? सम्यक्प्रतिष्ठ जीवों के विकार करने की भावना नहीं
होती तथापि उनके भी विकार होता है, इसलिये कम विकार कराता है न ?

उत्तर—कम आत्मा का विकार कराता है यह बात निश्चय है। आत्मा
का अपनी पर्याय के साथ ही विकार होता है कम विकार नहीं कराता
किन्तु आत्मा की पर्याय की अपनी योग्यता है। सम्यक्प्रतिष्ठ के रागद्वेष करने
की भावना नहीं है तथापि रागद्वेष होता है इसका कारण पारिवर्तन शून्य की

का पयाय की योग्यता है। रागद्वेष, भी भावना नहीं है सो तो श्रद्धागुण की पयाय है और रागद्वेष होता है सो चारित्रगुण की पर्याय है। पुरुषार्थ की शक्ति से रागद्वेष होता है, दह कहना भी निमित्तातीत कथन है। वास्तव में तो चारित्र गुण की उस समय की योग्यता के कारण ही रागद्वेष होता है।

४ —सम्यक्-निर्याय का बल ।

प्रश्न—जो विकार होता है सो चारित्रगुण का पयाय की ही-योग्यता है, तब फिर जहाँ तब चारित्रगुण की पर्याय में विकार होने की योग्यता हा वहाँ तक विकार होता ही रह तो एसा होन पर विकार को दूर करना जीव के भारीन कहीं रहेगा ?

उत्तर—प्रत्येक समय की स्वतंत्र योग्यता है, एसा निष्पत्तिज्ञान में स्थित है ? त्रिकालस्वभाव की ओर उमुख हुए त्रिना ज्ञान में एक एक समय की पयाय की स्वतंत्रता का निष्पत्ति नहीं हो सकता। और जहाँ ज्ञान त्रिकाल स्वरूप में उन्मुख हुआ वहाँ स्वभाव की प्रतीति के बल से पयाय में से रागद्वेष होन की योग्यता प्रतीक्षण घटती हा जाती है। जिम्ने स्वभाव का निष्पत्ति किया उसकी पर्याय में अत्रिन् समय तब रागद्वेष रहे, ऐसी योग्यता कदापि नहीं होता ऐसा ही सम्यक्-निष्पत्ति का बल है ।

५—काय में निमित्त कुत्र नहीं करता तथापि उसे 'कारण' क्यों कहा गया है ?

काय के दो कारण बहे गये हैं। इनमें से एक उपादान-कारण है वही अन्य कारण है दूसरा निमित्त-कारण है, जो कि आरोपित कारण है। उपादान और निमित्त इन दो कारणों के बहन का भासाय ऐसा नहीं है कि दोनों एकत्रित होकर काय करते हैं। जब उपादान-कारण स्वयं काय करता है तब दूसरी वस्तु पर आरोप कर्के उसे निमित्त-कारण कहा जाता है किन्तु वास्तव में वह कारण नहीं है।

प्रश्न—अब कि निमित्त वास्तव में कारण नहीं है, तब फिर उसे कारण क्यों कहा है ?

उत्तर—निमित्त कहला जाता है उस पदार्थ में उस प्रकार की (निमित्त रूप होन की) योग्यता है इसलिये अन्य पदार्थों से उसे पृथक् पहचानने के लिये उस 'निमित्त' कारण की सहा दी गई है। ज्ञान का स्वभाव स्व पर प्रभाशक है इसलिये वह पर को भी जानता है और पर में जो निमित्तपन की योग्यता है उसे भी जानता है।

४८—कर्म का उदय का कारण जीव को विकार नहीं होता।

जब जीव की पर्याय में विकार होता है तब कर्म निमित्तरूप होता है किन्तु जीव की पर्याय और कर्म दोनों मिलकर विकार नहीं करते। कर्मोदय के कारण विकार नहीं होता और विकार भिया इसलिये कर्म उदय में भाये ऐसा भी नहीं है। तथा जीव विकार न करे तब कर्म खिर जाते हैं उसे निमित्त कहत हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं है कि जीव न विकार नहीं किया इसलिये कर्म खिर गये हैं उन परमाणुओं की योग्यता ही ऐसी थी।

जिस द्रव्य की जिस समय, जिस क्षेत्र में जिस सयाग में और जिस प्रकार जैसी अवस्था होनी हो वही उस प्रकार अवश्य होती है उसमें अंतर हो ही नहीं सकता—उस भ्रदा में तो वीतरागीष्टि हो जाती है। स्वभाव की हता और स्थिता की एकता है तथा विकार से उदास नता और पर सं भिन्ता है, उसमें प्रतिसमय भेदविज्ञान का ही कार्य है।

४९—नैमित्तिक की व्याख्या।

प्रश्न—नैमित्तिक का अर्थ व्याकरण के अनुसार तो ऐसा होता है कि जो निमित्त से होता है सो नैमित्तिक है। और यों तो यह कहा है कि निमित्त से नैमित्तिक में कुछ नहीं होता इसका क्या कारण है ?

उत्तर—जो निमित्त से होता है सो नैमित्तिक है, अर्थात् निमित्त जनक और नैमित्तिक जन्य है 'यह परिभाषा व्यवहार से की गई है। वास्तव में निमित्त से नैमित्तिक नहीं होता किन्तु उत्पादान का जो कार्य है सो नैमित्तिक है और जब नैमित्तिक कार्य होता है तब निमित्त होता ही है, इसलिये

दत्त से उस निमित्त का जनक भी कहा जाता है। और नैमित्तिक का भी ऐसा ही होता है कि 'जिनमें निमित्त का सम्बन्ध हो सो नैमित्तिक है'। अर्थात् जब नैमित्तिक होता है तब निमित्त भी अवश्यमेव होता है। कना सम्बन्ध है, किन्तु यदि निमित्त-नैमित्तिक में कृत्र भी करे तो उनमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध न रहे, किन्तु कर्ता-कर्म सम्बन्ध हो जये।

१०—'निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, किन्तु निमित्त मिथ्या मानना चाहिये' यह मान्यता मिथ्या है।

प्रश्न—बिस्वों के पुत्र होना या कि तु दम कप तक नियमभाग नहीं दिया, अर्थात् पुत्र होने का निमित्त नहीं मिलाया इमनिय पुत्र नहीं हुआ किन्तु निमित्त मिलाया चाहिये, निमित्त क द्वारा उपादान का कार्य होता है, हमें निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यह मान ठीक है न ?

उत्तर—यह मान मिथ्या है। मैं निमित्त मिथ्याँ तो काय हो, यह बात ठीक नहीं है। इममें मान निमित्तानीन दृष्टि है। (पुत्र होने क सम्बन्ध में पुत्र कदा जा पुत्र है देतो पैरा -) निमित्त नहीं या इमनिये काय न्क पना और निमित्त निमित्तों से अर्थ हो—यह बात त्रिकाल में भी सच नहीं है। किन्तु काय होना ही न या इमनिय तत्र निमित्त नहीं था और जब कार्य होता है तब निमित्त अवश्य जाता है। यह अकारित निमित्त है। पर निमित्तों से आत्मा प्राप्त नर सद्धता है ऐसा मानना ही मिथ्यान्व है।

इस प्रकार आत्मा को अपने काम में पर की उपेक्षा नहीं है, तयारि कोई यह मान कि— हमें निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ' तो यह और मदा निमित्त की ओर ही देना करे अथवा उसकी दृष्टि सदा दूसरे पर ही रहा करे और वह पर की उपेक्षा करके स्वभाव का निर्मल कार्य प्रगट नहीं कर सकेगा। निमित्त क मार्ग से उपादान का कार्य कभी नहीं होता, किन्तु उपादान की योग्यता से ही (उपादान क मार्ग में ही) उसका कार्य होता है।

५१—निमिषान्न निमित्त की उपमा करन को कहता है ।

निमित्त की उपमा न कर मयात् परदृश्य क सात्र का सम्बन्ध न लाने यह बात निमिषान्न में विरह है । निमिषान्न का प्रयोजन-धूमर के साथ सम्बन्ध करना नहीं कि तु हमारे क माय का सम्बन्ध तुझसे हीतरागभाव करना है । समस्त मन्त्रार्थों का तात्पर्य हीतरागभाव है और यह हीतराग भाव स्वभाव क लक्ष द्वारा समस्त परदृश्यो से उदासीनता होने पर ही होता है । किसी भी परवत्त में रहना तो शायद का प्रयोजन नहीं है क्योंकि प के लक्ष से राग होता है । निमित्त भी परदृश्य ही है । इसलिये निमित्त क अपेक्षा छोड़कर मयात् उसी उपमा करके अपने स्वभाव की अपेक्षा करन ही प्रयोजन है । 'निमित्त की उपमा करन योग्य नहीं है, मयात् निमित्त क लक्ष छोड़कर योग्य नहीं है । एसा अनिप्राय मिथ्यात्व है' और उक्त निमित्त अनिप्राय को दाडन क बाद भी अनिप्राय के कारण जो निमित्त पर लक्ष जाता है तो राग का कारण है । इसलिये अपने स्वभाव क भाष्य से निमित्त इत्यादि पदव्यो की अपेक्षा करना सो दयाय है ।

५२—सुमुक्त जीवों का यह नाम समझनी चाहिये ।

उपादान-निमित्त सम्बन्धी यह बात विशेष प्रयोजनमूलक है । इसलिये समझे विना जीव की दो दृष्टियों में एकता की बुद्धि प्रदायि दूर नहीं हो सकती और स्वभाव की शक्ति ही हो सकती । स्वभाव की शक्ति हुए विना स्वभाव में अभेदता नहीं होती मयात् जीव का कारण नहीं होता । ऐसा ही वस्तु-स्वभाव कवलक्षणियों न देगा है और सत सुनियों ने कहा है । यदि जीव को कारण करना हो तो उसे समझना होगा ।

५३—समय कारण की व्याख्या ।

प्रश्न—समय कारण किने कहते हैं ?

उत्तर—प्रथम उपादान में कार्य होता है, तब उपादान और निमित्त दोनों एक साथ होते हैं इसलिये उन दोनों को एक ही साथ समय कारण कहा जाता है, और वही प्रतिपक्षी कारणों का भाव प्रसरण होता है । इसके

जहाँ समझना चाहिये कि—उपादान के क्षय में निमित्त क्षय करता है।
जहाँ उपादान का योग्यता होती है तब निमित्त अग्नय होता है।

प्रश्न—समय काय प्रत्यक्ष है गृह्य है, या पर्याय ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय ही समय कारण है। पूर्व पर्याय को वर्तमान पर्याय का उपादान कारण कहना 'मा' व्यवहार है। निमित्त से तो वर्तमान पर्याय स्वयं ही कारण-कार्य है। और 'उत्पत्ति' प्रमाण व्यवहार करें ता एक क्षण में कारण और कार्य ऐसे दो भेद करना भी व्यवहार है। वास्तव में वह प्रत्यक्ष समय ही पर्याय भवितुक है।

१५—उपादान कारण की परिभाषा।

प्रश्न—मिठी को घड़े का उपादान कारण कहा जाता है, सो क्या ठीक है ?

उत्तर—वास्तव में घड़े का उपादान कारण मिठी नहीं है किन्तु जिस समय घड़ा बनता है उस समय की अवस्था ही स्वयं उपादान कारण है। ऐसा हीन पर भी मिठी का घड़ा का उपादान कारण कहना का हनु यह कहना है कि—घड़ा बनने के लिये मिठी में अभी सामान्य योग्यता है वैसी योग्यता अन्य पदार्थों में नहीं है। मिठी में घड़ा बनने की विशेष योग्यता तो जिस समय घड़ा बनता है उगी समय है उससे पूर्व उसमें घड़ा बनने की विशेष योग्यता नहीं है। इस लिये विशेष योग्यता ही सच्चा उपादान कारण है। इस लिये को अधिक स्पष्ट करने के लिये 'उसे जीव में लागू' करते हैं —

—सम्पृक्तज्ञान प्रगट होने का सामान्य योग्यता ता—प्रत्येक जीव में है, जीव के अतिरिक्त अन्य किसी में वैसी सामान्य योग्यता नहीं है। सम्पृक्तज्ञान की सामान्य योग्यता (शक्ति) समस्त जीवों में है, किन्तु विशेष योग्यता अन्यजीवों में ही होती है। अव्यक्तज्ञान का तथा भावजीव जगत्-तक निर्यादृष्टि रहता है तब तब उसका भी सम्पृक्तज्ञान की विशेष योग्यता होती होती। योग्यता तो उगी समय होती है, जिस समय

पुत्राय मे सम्बन्धन प्रणय करता है। सामा य योग्यता द्रव्यरूप है और विशेष योग्यता प्रणयन है, सामा य योग्यता कार्य क प्रणय दान का उपादान कारण नहीं किन्तु विशेष योग्यता ही उपादान कारण है।

५५—चारित्र्य दशा और वस्त्र सम्बन्धी स्पष्टीकरण।

प्रश्न—चारित्र्य दशा प्रणय होता है इति निषेध वस्त्र नहीं छू जाते किन्तु वस्त्र के परमाणुओं ही योग्यता से ही व छूते हैं। ऐसा कहा है, किन्तु निमी जीव क चारित्र्य दशा प्रणय होती हो और वस्त्र में छूटन की योग्यता न हो तो वस्त्र मुक्ति हो जायगी ?

उत्तर—वही वस्त्र मुक्ति होने की बात नहीं है। चारित्र्य दशा क स्वरूप ही ऐसा है कि वही वस्त्र के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है नहीं। इसनिय चारित्र्य दशा में वस्त्र ही वस्त्र त्याग क्षता है। वस्त्र का त्याग उस परमाणु की अवस्था ही योग्यता है, उसका वस्त्र भावना नहीं है।

प्रश्न—यदि निमी मुनिरज के शरीर पर बाह्य व्यक्ति वस्त्र डाल जाये तो उस समय उनके चारित्र्य का क्या होगा ?

उत्तर—निमी दूसरे जीव के द्वारा वस्त्र डाल देने से मुनि के चारित्र्य में कोई बाधा नहीं आती क्योंकि उस वस्त्र क साथ उनके चारित्र्य का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं है किन्तु वही तो वस्त्र ज्ञान का होय अथवा होय-शायरूपन का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

५६—सम्यक् नियतिवाद क्या है ?

वस्तु का पयाय वनवद्ध जिस समय जा दानी हो सा नहीं होती है—ऐसा सम्यक् नियतिवाद तदज्ञान का वास्तविक स्वभाव है—यही वस्तुस्वभाव है। 'नियत' शब्द शास्त्रों में मनक जगद भाता है किन्तु इस समय तो शास्त्रों को पढ़े हुए लोग भी सम्यक् नियतिवाद की बात सुनकर गाँवें खाने लगते हैं। इसका निषेध करना कठिन है इसनिय कोई 'एकान्तवाद' कहकर उभाना करते हैं। बिना का भर्ष है निश्चित-निश्चय, वह एकान्तवाद

हो किन्तु बन्धु का यथार्थ स्वभाव है—यही अनेकान्तवाद है। सम्यक् नियमों का नियम करते समय बाधा में, राजपाट का भ्रमण हो तो वह ही जना चाहिये—ऐसा नियम नहीं है, किन्तु उसके प्रति यथार्थ उदात्त-त्व प्रदर्श हो जाता है। बाध्य संयोग में अन्तर पडे या न पडे किन्तु अन्तर का नियम में फट हो जाता है। अज्ञानी जीव नियमिवाद की शक्ति करता है, किन्तु ज्ञान और पुण्याय की स्वभावोन्मुख करक नियम नहीं करता। नियमि-वाद का नियम करने में जो ज्ञान और पुण्याय आता है उसे यदि जीव प्रकृत तत्त्व स्वभावप्रतिबन्धित वातरागात्मा प्रकट हो और पर से उन्मुख हो जाये, तो ही सम्यक् नियमिवाद का नियम किया कि स्वयं संघा माय ज्ञान मन में झूठा-दृष्टा रह गया, और पर का या राग का फटा नहीं हुआ।

सचमुच में परबन्धुत्व की नास्ति ही है तो फिर उसमें पर क्या पर? जब उदात्तानिमित्त का यथार्थ नियम हो जाता है तब कृत्य भाव उद-रणा है, और वातरागादृष्टि पूर्वक दीतरागी स्थिरता का प्रारम्भ हो जाता है। अज्ञानजन इस नियमिका को एकान्तवाद और अतीतमिथ्यात्व कहते हैं, किन्तु ज्ञानजन कहते हैं कि यह सम्यक् नियमिवाद ही अनेकान्तवाद है, और उसके निर्णय में जैनदर्शन का सार आजाता है। तथा वह कल्पज्ञान का कारण है।

१७—कुत्र अकस्मान् है ।। नहीं।

प्रश्न—सम्यक्दृष्टि का अकस्मात् भव नहीं होता इसका क्या कारण है ?

उत्तर—सम्यक्दृष्टि को यथार्थ नियमिवाद का नियम है कि जगत का अन्तर्गत पदार्थों की अस्मिता तथा योग्यतासुख ही होती है। जो न होना ही एक कुत्र भवेन होता है नहीं, इसलिये कुत्र अकस्मात् है ही नहीं। एही नियम धरा का कारण सम्यक्दृष्टि को अकस्मात् भव नहीं होता। बन्धु की यथार्थ जगत् स्थिति को स्थानी को शयः प्रतीति नहीं है इति उक्तं अकस्मात्

१८—निमित्त निम्नका ? और क्या ?

यदि निमित्त क यथाय व्यवस्था का समक तो यह मान्यता दूर हो आये कि निमित्त उपादान में कुछ बदला है। क्योंकि अब काय हुआ तब तो परको उसका निमित्त कहा गया है काय हान से पूर्व किसी को 'उसका निमित्त' नहीं कहा जाना—जो कार्य हो चुका है उसमें निमित्त क्या करेगा ? और कार्य होने से पूर्व निमित्त किसका ? कुम्हार किसका निमित्त है ? यदि घडालगी कार्य हो 'ता कुम्हार उसका निमित्त/हो " और यदि घडालगी कार्य ही न हो तो कुम्हार उसका निमित्त नहीं है। घडा बनान 'से पूर्व किसी का 'घडे का निमित्त ' कहा ही नहीं जा सकता। और यदि जब घडा बनता' है तभी कुम्हार का निमित्त कहा जाता है ता फिर कुम्हार'न घडे में कुछ भी किया है यह बात स्वयमेव भव-व सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न—उपादान में काय न हो तो परद्रव्य का निमित्त नहीं कहा जाता ? यह बात छरर कही गई है, परन्तु ' इम जीव को अनन्तवार धर्म को निमित्त ' मिला तथापि जीव स्वय घम का नहीं समक पाया एसा कहा जाता है। और उसमें जीव के धनकारी काय नहीं हुआ तमरि-पदार्थों का धर्म में निमित्त ता कहा है।

उत्तर— इम जीव को अनन्तवार धम का निमित्त मिला ' किन्तु यह स्वय धर्म का नहीं समक्य ' एसा कहा जाता है। यहाँ यद्यपि उपादान-म (जीव में) धनकारी कार्य नहीं हुआ इसलिये वास्तव में उसका त्रिय व पदाय धर्म के निमित्त नहीं है। परन्तु जो जीव घम प्रगट करत है उन जीवों को इम प्रकार क निमित्त ही हात है एसा हान कराने के लिये कार्य न हान पर भी स्थूलदि से उस निमित्त कहा जाता है।

१९—अनुकूल निमित्त।

सौलत हुए तन में हाथ जल गया कहा हाथ क अज्ञान में सौलता-हुमा नेत्र अनुकूल निमित्त है। घडे के फूटन म अकर लग जाना अनु-

जिसे निमित्त है। मनुक पदार्थों को मनुक निमित्त कहा है। यदि निमित्त नहीं ममाना चाहिये कि उसके अनिश्चित मनुक पदार्थ प्रतिकृत है। एक इन्द्रिय इन्द्रिय के-निमित्त मनुक या प्रतिकृत है ही नहीं। निमित्त मनुक होने का अर्थ इतना ही है कि वह पदार्थ कार्य के इतना मनुक-व्यवस्था है और व्यवहार-दृष्टि से उमपर-मनुकता का अर्थ है।

१०-दो पर्यायों की योग्यता एक साथ नहीं होती।

एक समय में दो योग्यताएँ कदापि नहीं होतीं। क्योंकि जिस समय दो योग्यताएँ हैं, वेसी पर्याय प्रगट होती है, और उसी समय—यदि दूसरी योग्यता भी हो तो एक ही माय में पर्याय हो जायें। परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। जिस समय जो पर्याय प्रगट होनी है, उस समय दूसरी पर्याय की योग्यता नहीं होती। आकार-पर्याय की योग्यता के समय रौप्यरूप पर्याय की योग्यता नहीं होती। तब फिर इस बात को ध्यान में रखना ही है कि निमित्त नहीं मिला इसलिये रौप्य नहीं बनी। और जब रौप्य बनती है तब उससे पूर्व की आकार-पर्याय का अभाव करके ही बनती है, तब फिर हमारे-को उसका कारण कैसे कहा जा सकता है? हाँ जो आकार-पर्याय का कारण हुआ तो उसे रौप्यरूप पर्याय का कारण कहा जा सकता है।

११-जीव पराधीन है—इसका क्या अर्थ है?

प्रश्न—ममयसार नाटक में स्वाभाव अधिकार के दृष्टि से जीव पराधीन को पराधीन कहा है। नियम पूरकता है कि हे भगवन्! जीव पराधीन है कि स्वाधीन। तब नियम उतार देते हैं कि-दृष्टि से जीव स्वधीन है, और पर्याय-दृष्टि से पराधीन है—तब फिर वहाँ जीव को पराधीन क्यों कहा है?

उत्तर—पर्याय-दृष्टि से जीव पराधीन है और जीव तब अपने स्वभाव का माध्यम छोड़कर परलस द्वारा तब स्वधीन रूप से स्वधीन होता है, परन्तु परलस जीव पर शक्ति रखे उसे।

पराधीन प्रयात् स्वयं स्वतन्त्ररूप से पर के भागी होता है—पराधीन मानता है न कि पर पराधे उसका भाधीन करते हैं ।

६२—द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का क्रम ।

प्रश्न—यह उपादान-निमित्त की बात तो द्रव्यानुयोग की है । परन्तु पहले तो जीव चरणानुयोग के अनुसार अज्ञानी हो और उस चरणानुयोग के अनुसार जन-प्रतिमा इत्यादि को भगीकार करे और फिर उस द्रव्यानुयोग के अनुसार अज्ञानी होकर सम्मत्वाद न प्रगट करे—ऐसी जैनधर्म की परिपत्ती होने के सम्बन्ध में कितना ही जीव मानते हैं क्या यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं जैनमत की ऐसी परिपत्ती नहीं है । परन्तु जैनमत में ऐसी परिपत्ती है कि पहले सम्यक्त्व हो और फिर मत हो । सम्यक्त्व स्व-पर का अज्ञान होन पर होता है तथा वह अज्ञान द्रव्यानुयोग का अन्वय करन पर होता है । इसीसे पहले चरणानुयोग के अनुसार अज्ञान करन सम्यक्त्व हो और फिर चरणानुयोग के अनुसार भगीकार करके मती होत है । इस प्रकार मुख्यतया तो निम्नदशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है तथा गौणरूप से विषे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होनी न मादम हो उसे पहले किजी जगदि का उपदेश दिया जाता है इसीसे समस्त जीवों को मुख्यतः द्रव्यानुयोग के अनुसार प्रायामिक उपदेश का अन्वय करना चाहिये यह जानकर निम्नदशा मार्गों को भी द्रव्यानुयोग के अन्वय से परामुक्त होना योग्य नहीं है ।



जड की क्रिया ।

शरीर जड है इसलिए उमरी प्रकृति जड की क्रिया है । शरीर जड की क्रिया-कुण्डला या स्थिर रहना जड की क्रिया है उमक कला जड परमात्मा का उमक कला नहीं है जड की क्रिया के साथ बंध अथवा मोक्ष का सम्बन्ध नहीं है । शरीर की दहन-चलनरूप अवस्था में अथवा स्थिररूप अवस्था में बंध या मोक्ष की क्रिया नहीं है अर्थात् शरीर की क्रिया भी क्रिया से आत्मा को बंध या मोक्ष लाने या हानि अथवा सुख-दुःख नहीं होता क्योंकि शरीर की क्रिया जड की क्रिया है ।

पहन शरीर की अवस्था घर में रहने का होता है और उसमें हवन-चरन आता है फिर शरीर की अवस्था बदलकर वहाँ से धर्मस्थान में जाकर स्थिर होता है । इस परिवर्तन से अज्ञानी जीव धर्म मानता है । परन्तु जड की क्रिया बदल जाने से आत्मा के धर्म पुण्य या पाप नहीं होता । शरीर की भौतिक ही रचना पद्म पद्म आहारादि का संयोग-विभाग भी जड की क्रिया है उसमें धर्म अथवा पुण्य-पाप नहीं होता । इनमें से किसी भी क्रिया का क्या आत्मा नहीं है ।

विद्वान् क्रिया ।

जीव की पशुत्व में जा रगद्वेष-अज्ञानरूप भाव होता है वह जीव की विकारी क्रिया है इस क्रिया से बंध की क्रिया कइत है । शरीरदि जड की क्रिया से विकारी क्रिया नहीं होती और जीव की विकारी क्रिया से शरीरदि जड की क्रिया नहीं होती । रगद्वेष-अज्ञानरूप भाव आत्मा की पर्याय में होते हैं, इसलिए आत्मा की पर्याय में ही वह विकारी क्रिया करने की योग्यता है । शरीर की क्रिया से पुण्य-पाप नहीं होते । पुण्य-पापरूप विकारी क्रिया बंधन की क्रिया है उस क्रिया के द्वारा समस्त मिलना है मोक्ष दूर होता है, और आत्मा के गुणों की पर्याय जड होती है । इस क्रिया से धर्म नहीं होता ।

फल—जब भी क्रिया करण पर ही तो धर्म होना है । जैसे पढ़ने से धर्मस्थान तक लज्जा धर्म गुण, और फिर दयार्थ समस्त उक्त होता है इस प्रकार जब भी क्रिया करने की बात हुई या नहीं ।

उत्तर—जब भी क्रिया द्वारा धर्म नहीं होता । जब भी क्रिया आत्मा का ही नहीं इतिहास उस क्रिया के साथ आत्मा का सम्बन्ध नहीं है । शरीर द्वारा ही शरीर की क्रिया बदलने से धर्म नहीं हुआ किन्तु 'तत्त्व अनन्त हो जाना है' ऐसा जो शुभभाव हुआ और वह से धर्मस्थान पर ही, वही निम्नप्रकार का निर्णय है—

(1) शुभभाव हुआ तो पुण्य है, वह विकारी क्रिया है । (2) शरीर का विकारविहीन हुआ तो जब भी क्रिया है । (3) आत्मप्रदों का ज्ञानपरिष्कार हुआ तो आत्मा की विकार क्रिया है । (4) सब सुनने के प्रति लज्जा हुआ तो वह शुभभावपूर्ण विकारी क्रिया है । यह चार क्रियाएँ हुई तबतक धर्म नहीं हुआ । धर्म सुनने के लक्षण से भी स्पष्ट, स्वतन्त्र ही और उन्मुक्त ही और धर्म शुद्ध आत्मस्वभाव का महिमा पूर्वक निर्णय कर ता वह विकारी क्रिया है, और वही धर्म है । जब भी क्रिया आत्मप्रदों की ज्ञानपरिष्कारपूर्ण क्रिया, और शुभभावपूर्ण विकारी क्रिया से धर्म क्रिया भिन्न है ।

दूसरी प्रकार किसी जीव के शरीर—प्राण वमान इत्यादि की शुभ भावना हुई, और शरीर की क्रिया पापकार्यों में हुई तो वही भी शरीर की क्रिया, जब भी स्वतन्त्र क्रिया है, उससे जीव का लाभ—हानि नहीं होती । और जो शुभभाव हुआ, वह जीव की विकारी क्रिया है, उससे जीव को हानि होता है । शुभ भावों के कारण ही शरीर की क्रिया नहीं होती ।

शुभ परिणाम से पाप और शुभ परिणाम से पुण्य का समावेश विकारी क्रिया में होता है, और दोनों समय हानि वाली शरीर की क्रिया वह स्वतन्त्र जब भी क्रिया है । मेरे परिणामों के कारण जब भी क्रिया हुई है—एसा माने तो मिथ्या है, और पुण्य परिणामों के कारण धर्म की क्रिया हुई है—

ऐसा ही मिथ्या है ।

ने इष्ट स्वप्न में अपने 'त्रैलोक्यिक स्वभाव की-धृता-ज्ञान और स्थिरता में स्थित हुई है वही, अविद्यारु क्रिया है, धर्म है, मोक्ष की-वत्सादन है; ससार से शान्त है, मुख देने वाली, और दुःख दूर करने वाली है ।

विद्यारी क्रिया या 'अविकारी क्रिया', दोनों एक समय मात्र की-जीव की प्रकृति है, किन्तु इन दोनों के लक्षण में अन्तर है । अविद्यारी क्रिया का लक्षण विद्यारी शुद्ध स्वभाव है, और विकारी क्रिया का लक्षण परद्रव्य तथा पुण्य-पाप है । जड़ का काय करने की बात दो में से एक भी क्रिया में नहीं है, इसका विश्व इन दोनों से अलग स्वतन्त्र है, उससे न ता-पन्न होता है और न नुक्ति ?

मोक्ष किस लक्षण से होता है ? तीन प्रकार की क्रियाओं में से किस क्रिया से मोक्ष होना है ? जड़ के लक्षण से मोक्ष होता है या पुण्य-पाप के लक्षण से ? आत्मा में परलोक का त्याग या ग्रहण नहीं होता, इसलिये उस लक्षण से मोक्ष नहीं होता । जो पुण्य-पाप होते हैं सो भी परलोक से प्राप्त है इन्द्रिय विकार है उनके लक्षण से मोक्ष नहीं होता । अर्थात् जड़ की क्रिया से और विकारी क्रिया से मोक्ष नहीं होता । जड़ की क्रिया का लक्षण सयोग होना पर भी, और पेयाय में लक्षिक रागद्वेष होने पर भी मैं स्वप्न से भिन्न हूँ और मेरे शुद्ध ज्ञानभाव में रागद्वेष नहीं हैं, ऐसा भेद-ज्ञान ही सा प्रारम्भ की धर्म की क्रिया है, परन्तु शुद्ध वाताभाव में स्थिरता करने पर रागद्वेष दूर होस जात है । इस प्रकार धर्म की क्रिया के बल से विद्यारी क्रिया का नाश होता है ।

(१) पट में अन्न जाय या न जाय वह जड़ की क्रिया है उसमें न तो पुण्य-पाप है और न धर्म ही । (२) पट में अन्न नहीं गया इसलिये उस समय (उपवास में) जीव का उपेक्षा मालूम हो कि उपवास तो भले किन्तु कुछ जैसा आश्रय आनन्द नहीं आया तो उसके वह अशुभ परिणाम है । जिनसे पाप बन्ध होता है । (३) यदि उस समय मन्द कर्माय रहे तो शुभ परिणाम होते हैं जिनसे पुण्य-बन्ध होता है । (४) उस समय

मन्दार शरीर और पुण्य-पाप का लक्ष छोड़कर अपने त्रकालिक आत्मस्वभाव का परिचय करने उद्योग में स्थिर हुआ-अनुभव में एवाच्य हुआ सो धर्म है।

इनमें से पहली जड़ की क्रिया है दूसरी और तीसरी विकार की क्रिया है और चौथी धर्म की क्रिया अथवा अविकार की क्रिया है।

शरीर स्थिर रहे तो जड़ की क्रिया है और उस जड़ की क्रिया से जो आत्मा का अनुभव करता है वह भ्रमानी है। जड़-शरीर की क्रिया स्थिर रहने के रूप में हो गई परन्तु उस समय आत्मा की क्रिया किस प्रकार की हो रही है इसे जान बिना धर्म का माप कहां से निकालना ? धर्म की क्रिया शरीर में होती है या आत्मा में ? जिसकी भूमिका में धर्म की क्रिया होती है उस आत्मस्वभाव की जिसे स्वर नहीं है, वह धर्म की क्रिया कहां करेगा ? इसलिये सर्व प्रथम आत्मस्वरूप को समझना चाहिये। यही प्रारम्भिक धर्म की क्रिया है, इसके अतिरिक्त धर्म की वह दूसरी क्रिया नहीं है।

व्यवहारनय के पक्ष के सूक्ष्म आशय का स्वरूप और उसे दूर करने का उपाय

अनन्त प्राणियों को अनन्तकाल से अपने निश्चयस्वभाव की महिमा शत न होने से राग और विकल्प का सुदमपन रह जाता है, उस व्यवहार के सुदमपन का स्वरूप यहाँ बताया जाता है ।

जीव को ज्ञान में परवस्तु, विकल्प तथा आत्मा का स्वभाव भी ज्ञात होता है । उसके ध्यान में यह आता है कि आत्मवस्तु, राग अथवा परवस्तु जैसी नहीं है । यह ध्यान म आने पर भी यदि राग में आत्मा का वीर्य रुक जाय तो व्यवहार का पक्ष रह जाता है । आत्मा के वीर्य को पर की ओर के मुकाब से प्रपक् करके शुभराग का जो लक्ष होता है, उस पर भी लक्ष न देखर स्वभाव के ज्ञान से वीर्य को उस शुभभाव में न लगाकर यदि शुभ से भी भिन्न आत्मम्यमाव की ओर प्रवृत्त करे तो समझना चाहिए कि जीव ने निश्चय व आशय से व्यवहार का नियेष किया है ।

आत्मा बनेमान में ही ज्ञानादि अनन्त स्वभाव-गुण का पि है उरका अरुस्था में जो अल्पान अशुभ अवस्था होती है, उसे छोड़ने को जीव का मन होता है, क्योंकि उसमें अशुभ से शुभ में वीर्य को युक्त करना वर्तमान मात्र क निये ही वीर्य का कार्य है । नमस्तिगम्बर जैन साधु लोक पर-
 1

महात्म का शुभराग तथा देव, गुरु, शास्त्र की धृष्ट करके उनकी बड़ी हुई बात ध्यान में लाने पर भी सम्यग्दर्शन का प्रभाव होने में जीव के मूर्ख रूप में व्यवहार की पकड़ रह जाती है ।

ज्ञान में शुभ और अशुभ दोनों का ध्यान करके जीव वीच का अशुभ में से शुभ में बदल देता है परन्तु वह वर्तमान मात्र के शुभराग में वीच का जो भार है उसे लेकर यदि स्वभाव की ओर वाप देता व्यवहार का पत हूट जाय—। आत्मा के स्वभाव में विकार नहीं है विकार क्षणिक है और पर पदार्थ भिन्न हैं—यह ध्यान में लिया गयात् १—शरीर इत्यादि परवस्तु—में नहीं हैं यह ज्ञान में धारण कर लिया । २—कर्म जन्म है यह आत्मा 'स' भिन्न है यह शास्त्र से समझा और जो ३—अशुभ भव होता है उसे प्रवृत्त्या के लक्ष में रह रहकर बदल—अवस्थादृष्टि में ही रहकर अज्ञान में अशुभ को बदल कर शुभ लिया । शुभभावा अशुभभावा और शुभा शुभ रहित आत्मस्वभाव को ध्यान में लिया तथा जो अशुभ होता है उसे आत्मवीच के द्वारा छुड़कर शुभ लिया, किन्तु स्वभाव की द्वाय पुष्पान का बन भटक रहा इसलिये निरवय का आश्रय नहीं हुआ और न व्यवहार का पक्ष ही गया ।

जीव को ज्ञान में परवस्तुओं शुभ तथा अशुभ जिसे कहा जाय यह और शुभाशुभ से रहित स्वभाव ध्यान में आता पर भी उस शुभ की ओर से वीच का बन छूटकर स्वभाव के पक्ष की ओर न जाय तो उस जीव के निरवय का विषय जो स्वभाव है वह रुचिकर नहीं हुआ क्योंकि उसका वीच स्वभाव की ओर नहीं जाता । प्रत्युत व्यवहार में ही भटक रहा है ।—

अशुभ ने शुभभावा करने में वीच वर्तमान मात्र के लिए ही है और शुभाशुभ रहित स्वभाव की रचि के वीच का त्रैकालिक बल है । स्वभाव की रचि का त्रैकालिक बल में शुभ के मुहाव में से वीच प्रयत्न होकर जब स्वभाव की महिमा में उमगा बन आता है तब त्रैकालिक की दृष्टि से सहज ही वर्तमान मात्र के लिए व्यवहार का निषेध हो जाता है । उनके ऐसी

मिथ्य नही होता कि निषेध करें। इस प्रकार निरचयनय, व्यवहारनय का नियम करना है।

जानने में 'राग मेरा स्वरूप नहीं है,' इस प्रकार व्यवहार का जो नियम है का भी राग है। मैं जीव हूँ—विचार मेरा स्वरूप नहीं है, इस प्रकार नव तन्त्रादिक के विचार के वर्तमान मात्र के भावों पर जो धीर्य का बल मा सकता है, परन्तु स्वभाव से, परामुखा मुखाव से छूटकर अन्तर मन में मुकन के लिये धीर्य की उन्मुगता काम न करे तो पहना होगा कि वह व्यवहार की रुचि में जमा हुआ है, किन्तु उसका मुखाव निरचय-स्वभाव की भार नहीं है। जिस धीर्य का मुखाव निरचय स्वभाव की भार होता है उस धीर्य में वर्तमान का मुखाव (व्यवहार का पक्ष) अवश्य छूट जाता है इसलिये अन्तर्त्तरी ने निरचय के द्वारा व्यवहार का निषेध दिया है।

अभाव्य और मव्य मिथ्यादृष्टि जीव यदि बहुत करे तो अग्रिम को द्वाड कर वैराग्य तक आता है इस वैराग्य का शुभाभा भी वर्तमान मात्र के लिये है यहाँ वर्तमान पर हन का लन स्थिर हुआ है, यहाँ से छोड़कर त्रिकाशी स्वभाव पर हान का लन स्थिर कर रगें, इस प्रकार स्वभावा की ओर की का बल जबतक न हो तबतक निरचय का आशय नहीं होता और निरचय के आशय के बिना व्यवहार का पक्ष नहीं छूता।

व्यवहार का आशय तो वह अनव्य जीव भी करता है जिसकी कभी मुक्ति नहीं होती। इसलिये निरचय के आशय से ही मुक्ति होती है। अतः निरचयनय से व्यवहारनय निषेध करने योग्य ही है।

बन्धे सब शुक जहा क्या कहते हैं। इसका विचार हान में आता है, तथा वष महावतादि के विरुद्धताओ व्यवहार उच्छा है उसे भी हान आता है—किन्तु उस राज्य व्यवहार से निरचय स्वभाव की अशुद्धता (शुद्धता) अवश्य दृष्टि में नहीं ईच्छी तबतक निरचय स्वभाव में धीर्य का बल स्थिर नहीं होगा और निरचय स्वभाव का आशय के बिना निरचय

सम्यक्त्व नहीं होता। विरचय सम्यक्त्व के बिना व्ययहार का निपथ नहीं होता। इन प्रकार जीव के व्यवहार का सुदम पक्ष रह जाता है।

‘राग धर्ममानमात्र क विण विहार दे प्रत्येक भ्रमस्था में यह राग बदलना जाता है और उस विहार के पीछे निर्विहार स्वभाव को धारण करने वाला द्रव्य ध्रुव है। इस प्रकार विद्वान् क द्वारा जीव क ध्यान में आता है। निरुपलब्ध वैकानिक स्वभाव में वीर्य को लगाकर भ्रमणी निश्चय स्वभाव का बन नहीं आता तब तक व्यवहार का निपथ नहीं होता, और व्यवहार के निपथ के बिना सम्यग्दनेन नहीं होता।

ग्रहणी क व्यवहारनय क पक्ष का सुदम अभिप्राय रह जाता है वह केवलिगम्य है। अग्रमथ क वह कदाचित् दृष्टिगाचर नहीं आता। यह अग्नि प्राय वसे रह जाता है। इन सम्बन्ध में यहाँ कथन चल रहा है।

आत्मा सर्वेश हानस्वभावी भक्तान् शयक, शान्तस्वरूपी है—ऐसे स्वभाव के जानते हुए भी और राग का ध्यान आते हुए भी स्वभाव की ओर वीर्य डलकर अंतरण में वह बात नहीं देखी, हमलिये वीर्य बाहर आकृष्ट जाता है। यदि स्वभाव में यह बात अम आय कि यदिसुख भाव के पक्ष में नहीं है तो उसका वीर्य अधिक हाकर निश्चय में क्लृप्त जाता है, और निश्चय में वीर्य डल गया कि वही व्यवहार का निपथ हो आता है।

अभाव जीवों को तथा मिथ्यादृष्टि मन्थजीवों को स्वभाव का ध्यान आने पर भी स्वभाव की महिमा नहीं आती। ध्यान में आता है इसका अर्थ यों पर सम्यक्ज्ञान में ध्यान की बात नहीं है किन्तु ज्ञानारण के लिये उपरान्त की प्रणयना में इस बात का ध्यान आता है। ग्यारह अंग के हान में सब बात आ आती है कि—आत्मा का स्वभाव त्रिकोन है—राग दृष्टिक है किन्तु वृत्ति का वीर्य शुभ की ओर से नहीं आता। बहुत गभीर में स्वभाव की माहात्म्यदशा में वीर्य को लगाना चाहिए। वह यह स्वयं नहीं करता इसलिए व्यवहार का पक्ष रह जाता है।

यों पर अभ्यन्त की बात तो मात्र 'दृष्टान्त' के रूप में कही है, किन्तु सभी निष्ठादि जीव कहीं-कहीं व्यवहार के पक्ष में झटक रहे हैं, इसी लिए उन्हें निश्चय सम्पददर्शन नहीं होता। जैन साधु होकर और-सन्चे रह, रात्र, गुरु को मानकर वे क्या कहते हैं यह ध्यान में भी लिया, किन्तु वर्तमान भाव क कुहाव में (अनस्था के लक्ष में झुंकर) वीर्य बदलता है उस वीर्य को वर्तमान से हटाकर त्रिकाली स्वभाव की ओर नहीं लगता। वर्तमान पर्याय को वर्तमान से हटाकर त्रैकालिकता की ओर लगाये किन्तु सम्पददर्शन नहीं होता इसलिये सबस भगवान ने सदा निश्चय के आश्रय से व्यवहार का निषेध किया है।

वीर्य को सत्य, प्रसन्न, अद्विष्टा इत्यादि शुभरागरूप व्यवहार का पक्ष है-वर्तमान मात्र के भाव का आग्रह है, उसकी जगह यदि त्रैकालिकता की ओर वीर्य का बल लगाया जाय तो निश्चय का आश्रय प्राप्त हो, किन्तु त्रैकालिकता की ओर वीर्य का बल नहीं है, अर्थात् वीर्य पर में (पराश्रित व्यवहार में) ही झटक जाता है।

साध्य कः त्याग अथवा प्रवृत्ति पर सम्पददर्शन अवलम्बित नहीं है, किन्तु वह निश्चय स्वभाव पर आश्रित है। यदि जीव स्वभाव की ओर की रुचि में वीर्य का बल नहीं लगाता तो उसके व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता और सम्पददर्शन नहीं होता सम्पददर्शन अन्तरंग स्वभाव की वस्तु है।

त्रैकालिक और वर्तमान इन दोनों पहलुओं का ध्यान मात्र पर भी- प्रकालिक स्वभाव की रुचि की ओर नहीं झुंका, किन्तु वर्तमान पर्याय की रुचि की ओर उ मुख होता है। " यह स्वभाव है-यह स्वभाव है " इस प्रकार यदि स्वभाव रुचि की ओर झुंका तो, वर्तमान पर, जो बल है, वह तत्काल छूट जाय, किन्तु त्रिकाली स्वभाव को ' यह है ' इस प्रकार रुचि में लेने के बदले वर्तमान शुभराग में ' यह राग है ' इस प्रकार वर्तमान पर उसका भार रहता है इतिहास निम्नलिखित है -

अतंग में परिष्कृत नहीं होता अर्थात् निश्चय का आश्रय नहीं होता और व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता। व्यवहार का पक्ष निश्चयात्त्व है।

आत्मा का जो वीच करता है वह तो अवस्थारूप (वर्तमान) ही है परन्तु उस वर्तमान वीच को वर्तमान के उच्च पर (अवस्था-दृष्टि में) स्थिर करे और त्रैलोक्य अंतरम स्वभाव की दृष्टि वीच को प्रेरित न कर तो विकल्प नहीं उच्यता और सम्यग्दर्शन नहीं होता।

प्रत्येक जीव के वर्तमान अवस्था में वीच का कार्य तो होता ही रहता है किन्तु उस वीच का कार्य स्थापित करना चाहिए वह भान न ज्ञान से जीव के व्यवहार का पक्ष नहीं छूटता। मैं एक शायकभाव हूँ मैं वर्तमान अवस्था के बराबर नहीं हूँ किन्तु अत्रिक त्रिकाल शक्ति का पिंड हूँ” इस प्रकार अज्ञान निश्चय स्वभाव की दृष्टि के बल में वीच को स्थापित करना चाहिए—एकाम करना चाहिए। यदि निश्चय स्वभाव की ओर के बल में और दृष्टि में वीच को न जोड़े तो वह वीच व्यवहार के पक्ष में छूट जाता है और उसके व्यवहार का सूत्र पक्ष नहीं छूटता।

जब व्यवहार के पक्ष से छूटकर वीच में शायक स्वभाव का अज्ञान स्थापित किया जाता है तब भी व्यवहार का ज्ञान तो (शौक्लरूप में) रहता ही है कहीं ज्ञान छूट नहीं जाता क्योंकि वह तो सम्यग्ज्ञान का अंग है। व्यवहार का ज्ञान छूटकर निश्चय की दृष्टि नहीं होती। सम्यग्दर्शन के होने पर व्यवहार का ज्ञान तो रहता है किन्तु उत्तर से दृष्टि उठकर स्वभाव की ओर एकाम हो जाती है। इस प्रकार निश्चय के आश्रय के समय व्यवहार का पक्ष छूट जान पर भी ज्ञान तो सम्यक्ज्ञानरूप अनकाल ही रहता है किन्तु जब ज्ञान सर्वथा व्यवहार की ओर उच्यता है तब निश्चय का आश्रय विहित मात्र भी न होने से वह व्यवहार का पक्षवाला ज्ञान निश्चयारूप एकांत है। सम्यग्दर्शन होने के बाद निश्चय का आश्रय होने पर भी जबतक अज्ञान भूमिका है तबतक व्यवहार रहता है—किन्तु निश्चयनयात्रित जीव को उस ओर आश्रय नहीं होती अतः वीच का बल व्यवहार की ओर नहीं डलता।

सर्वद्वार, शास्त्र, गुरु की पहचान, नवतत्व का ज्ञान, ब्रह्मचर्य का पाठन तथा पूजा, व्रत, तप और भक्ति-इत्यादि के करने पर भी जीव का मिथ्यात्व क्यों रह जाता है ? क्योंकि जीव ' यह वर्तमान परिणाम ही है और तथापि मुझे लाभ है, ' इस प्रकार वर्तमान पर ही लक्ष को स्थिर एक उसमें भटक रहा है, और त्रैकालिक एकरूप निरपेक्ष स्वभाव की ओर नहीं गया, इसलिए मिथ्यात्व रह गया है। यदि जीव वर्तमान के ऊपर का लक्ष को छोड़कर त्रैकालिक स्वभाव को लक्ष में ले तो सम्यग्दृष्टि होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन का आधार (भाष्यमूलतस्तु) त्रैकालिक स्वभाव है वर्तमान प्रवृत्त पर्याय के आधार पर सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता।

निश्चय-भ्रम-भ्रमेद स्वभाव की ओर जाते हुये बीच में जो विद्वत्त्वादिन्य व्यवहार माये उसके निये खेद होना चाहिये, ऐसा न करके जो उसके प्रति उन्मादित होता है, उसे स्वभाव क प्रति भादर नहीं रहता। अर्थात् वह मिथ्यात्व ही रहता है। निश्चय स्वभाव की ओर के वीर्य का उन्माद होने क बदल व्यवहार में जिसका वीर्य उल्लसित होता है उसके स्वभाव की ओर का उन्मादित भाव परावर्तित पडा रहता है। इसलिये जीव क व्यवहार का पक्ष दूर नहीं होता।

व्यवहार की दृष्टिगता जीव भगवान की दिव्यज्वनि का उपदेश सुनकर उसमें से भी व्यवहार की ही दृष्टि को पुट करता है। भगवान की वाणी में निश्चय स्वभाव का और व्यवहार का - दोनों का मेल कर दिनाया है, अर्थात् दोनों नयों को समान स्तर पर रखा है " यो मानकर वह अपनी जीव भ्रमन व्यवहार कूट वी हट करता है परन्तु भगवान की वाणी से निश्चय का भास्य करके व्यवहार का निषेध करने को कहनी है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों के बीच परस्पर विरोध पाया जाता है, इसे वह भ्रमणी नहीं जानता, और न उपर दृष्टि ही करता है तथा व्यवहार का निषेध करके निश्चय में वीर्य उन्मादित भी नहीं करता। निश्चय क भास्य का उन्माद न भ्रम व्यवहार आता है, उसका खेद न करके

दिया जाता है कि व्यवहार तो बीच में आया ही है और इस प्रकार निश्चय दृष्टि के व्यवहार का नहीं, दृष्टम सिद्धि सिद्धि में नहीं है। इस सिद्धि में प्रथम स्वभाव में उल्लसित होकर सम्बन्धि नहीं हो सकता।

प्रश्न—क्या ऐसे एकांत निश्चय नहीं हो जाता ?

उत्तर—नहीं, इसी में सच्चा मनकत है। निश्चय स्वभाव और राग दोनों को जानकर जब बीच के बल का निश्चय स्वभाव में लाना होता है तो ज्ञान में गौणत्व से यह ध्यान तो जाता है कि अस्मिता में विकार होता है। स्वभाव की मार लाने का जीवपयाव की अपेक्षा से प्रथम का कवलज्ञानी नहीं मानता। इस प्रकार ज्ञान में निश्चय और व्यवहार दोनों को जानकर निश्चय का आशय और व्यवहार का निश्चय दिया है और यही मनकत है। दोनों पक्षों को जानकर एक में आकर और दूसरे में मनकत हुआ—अर्थात् निश्चय को ग्रहण किया और व्यवहार को दाया मन दर्श मनकत है। किन्तु यदि निश्चय और व्यवहार दोनों को आशय योग्य मान तो यह एकान्त है। (दो पक्ष परस्पर विरोध रूप है इतिविद्य दोनों का आशय नहीं हो सकता। जो कि जब निश्चय का आशय करता है तब उसके व्यवहार का आशय हुए जाता है और जब व्यवहार का आशय में प्रकृत जाता है तब उसके निश्चय का आशय नहीं होता। एता होने से जो दार्शनिकों को आशय योग्य मानते हैं वे दोनों पक्षों को एकमेव मानने के कारण एकान्तकारी हैं।) राग सम्बन्धीता में सहायता न कर किन्तु 'राग मुक्त सहायता नहीं करता' ऐसा विकल्प भी सहायता न करे तब इस प्रकार राग से मुक्त होकर जब जीव स्वभाव को मार उतारा है तब मुख्य स्वभाव की (निश्चय की) दृष्टि होती है और अस्मिता गौण हो जाती है। इस प्रकार निश्चय का मुख्य और व्यवहार को गौण करने से ही यह नव कहलाता है।

जिस प्रकार का पक्ष है वह तीन एकांत व्यवहार की ओर डल जाता है। अतिले वह निश्चय स्वभाव का निरन्वार करता है। मात्र ज्ञान की उच्चतमता में इतना अधिक बल नहीं है कि वह निश्चय को वापस

सनाव का दौरेन बंराए । यदि दृष्टि में मात्र निष्पद्य रथगाव पर भाग न-
 दे तो व्यवहार को गौण कृक स्वभाव की ओर नहीं मुक सकता और सम्यग्-
 हन नहीं हा संकता । यदि वर्तमान म होनेवाल विकारभाव की ओर क पल
 को लीक करके स्वभावा की भार बल को लगाये तो अवस्था में स्वभावरूप
 अर्थ हो सम्भा है । ज्ञान और वीथ की ह्ना स्वभाव का ओर दने तो यह
 निरवय की मुम्प्रता हुई और रागादि विकल्प को जानकर भी उस ओर न
 का-उमे मुख्य न किया तो वही व्यवहारनय का निपेध है । वहाँ भी
 व्यवहार का ज्ञान है और उस ज्ञान में व्यवहार गौणरूप से विद्यमान है ।

ज्ञान और वीथे क बल से स्वभाव की भार जो मुम्प्रता होनी है उस
 मुम्प्रता का यन वीतरागता और केवलज्ञान होन तक यना रहता है बीचमें
 मने ही व्यवहार भाये, किन्तु कभी भी उसरी मुख्यता नहीं होती । छठे गुणस्थान
 तक राग रहेगा तथापि दृष्टि में कभी भी राग की मुम्प्रता नहीं होगी ।
 प्रकृति स्वभाव ही मुम्प्र है अथात् दृष्टि के बलसे वह निष्पद्य स्वभाव
 की ओर दक्षत दतेते और 'रागरूप व्यवहार को नोते तोते सपूर्ण वीतरागता
 और केवलज्ञान हा जय्यगा । केवलज्ञान होन के बाद सपूर्ण नये पक्ष का हाता
 ज्ञान से वहाँ न-कोई मुम्प्र रहता है और न गौण, और न कोई विकल्प
 ही रहता है ।

यह बतलाता है कि नत्र तत्त्वा की भद्रा और ग्यारह मग का ज्ञान होने
 र भी जीव का सम्यग्दर्शन कैसे रुक जाता है । त्रैकालिक और वर्तमान इन
 जनों को चायोपशमिक ज्ञान से जाना तो अत्रय किन्तु वर्तमान की ह्ना
 प्राण, प्रैकालिक स्वभाव की ओर मुक नहीं सकता और त्रैकालिक स्वभाव की
 ओर उम्प्र होनवाला प्रथम दोनों का विचार करके स्वभावान्मुख्य होता है ।
 जो स्वभाव की दृष्टता प्राप्त कर लेता है वह व्यवहार को पीका कर देता
 । यत्रपि अमौ व्यवहार का सर्वथा अभाव नहीं हुआ, किन्तु जैसे २ स्वभाव
 की ओर ललता जाता है वैसे २ व्यवहार का अभाव होता जाता है ।

घरतु को मात्र ह न क ध्यान में लेने से ही सम्यग्दर्शन नहीं हो जाता, किन्तु
 न क साध वीथ के उद्य भोग के बल ही भावरयुक्ता है । यहाँ ज्ञान और

वीर्य दोनों क वज्र को स्वभावामुक्त करने की बात है । शुभ राग से मेरा स्वभाव भिन्न है, हमप्रकार का जो ज्ञान है उस ओर वीर्य को खालत ही त-काज सम्यग्दर्शन हो जाता है । यदि स्वभाव की दृष्टि कर तो वीर्य स्वभाव की ओर उल किन्तु जिनके राग की पुष्टि और दृष्टिभाव है, उसका व्यवहार की ओर का मुकाब दूर नहीं होता । जहाँ तक मायता में ओर दृष्टि के वीर्य में निरपेक्ष स्वभाव नहीं दृष्टता और राग रुचता है—वहाँ तक एकांत मिथ्यात्व है ।

जीव अशुभ भाव को दूर करके शुभ भाव तो करता है परन्तु वह शुभ भाव में धर्म मानता है यह स्थूल मिथ्यात्व है । जीव अशुभ को दूर करके शुभभाव करता है और शास्त्रदि क ज्ञान से यह भी समझता है कि शुभ राग से धर्म नहीं होता तथापि मात्र सैत-यस्वभाव की ओर का वीर्य न होने से उसके मिथ्यात्व रह जाता है । मात्र सैत-यस्वभाव की ओर क वज्र से यत्मान की ओर से दृष्टता आदिये यही दर्शनविशुद्धि है । यहाँ ज्ञान की प्रगटता अथवा कषाय की मदता या त्याग पर भार नहीं दिया किन्तु दर्शनविशुद्धि पर ही सम्पूर्ण भार है ।

जैसे मिनी से सजाह पूत्री और उमके कथन को ध्यान में भी रता परन्तु उसके अनुगार मानने के लिए तैयार नहीं होता । तात्पर्य यह है कि उस बात पर ध्यान तो दिया किन्तु तदनुगार आचरण नहीं किया । इसीप्रकार शास्त्र क कथन से यह तो जान लिया कि निरसय क आशय से मुक्ति और व्यवहार क आशय से बंध होता है इसप्रकार उस सजाह को ध्यान में लेकर भी उसे नहीं माना । शास्त्ररहित दोनों पहलुओं को ध्यान में तो लेता है परन्तु मानता नहीं है जो उसकी दृष्टि में होता है और दृष्टि ता तृत्व काम नहीं

उसे दि-ध्वनि का आशय तो ध्यान में आ जाता है कि 'भगवान् यों बना चाहते हैं किन्तु उस ओर वह दृष्टि नहीं करता । अयोपशम भाव से

न्य धरणा से ध्यान करता है, परन्तु वह यथाधनया रुचि से नहीं समझता ।
 'यदि यथाधनया रुचि से समझे तो सम्यग्दर्शन हुए बिना न रहे ।

स्वभाव की बात उस वर्तमान विद्युत् के राग से भिन्न होती है । स्वभाव की रुचि के साथ जो जीव स्वभाव की बात का सुनता है वह उस प्रथम राग से आगिष्ट भिन्न टाकर सुनता है । यदि स्वभाव की बात सुनते सुनते उठना जाये अथवा यह विचार भाये कि यह तो वृत्ति मार्ग है, और स्वभाव स्वभाव की ओर अग्रि मानुम हा तो समझना चाहिए कि उस स्वभाव की अग्रि और राग की रुचि है क्योंकि वह यह मानता है कि राग में मेरा कार्य काम कर सकता है, और रागरहित स्वभाव में नहीं कर सकता । यह भी उस वर्तमान मात्र के लिए व्यवहार का पत्र है । स्वभाव की बात सुनकर उस ओर महिमा लाकर इस प्रकार स्वभाव की ओर कार्य का उत्साह होना चाहिए कि 'अहो ! यह तो मेरा ही स्वप्न बनना रहे है' । किन्तु यदि यों माने कि 'यह काम तुम्हसे नहीं होगा' तो समझना चाहिए कि वह वर्तमान मात्र के लिए राग के चक्कर में पड़ गया है और राग से प्रयत्न नहीं हुआ । हे भाई ! यदि तूने यह माना कि तुम्हसे राग का कार्य हो सकता है और राग से अलग होकर रागरहित ज्ञान का कार्य जो कि तेरा स्वभाव ही है तुम्हसे नहीं हो सकता, तो समझना चाहिए कि त्रैकालिक स्वभाव की अग्रि होने से तुम्हें सूक्ष्म रूप में राग के प्रति मिटाया है—व्यवहार की पक है और यही कारण है कि सम्यग्दर्शन नहीं होता ।

जहाँ रागरहित नायक स्वभाव की बात भाये वहाँ यदि जीव को ऐसा लग कि 'यह काम कैसे होगा' तो समझना चाहिए कि उसका वीर्य व्यवहार में अटक गया है अर्थात् उसे स्वभाव की दृष्टि से सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता । जो सूक्ष्म ज्ञान स्वभाव है उसकी मिटाव भ्रूरी कि राग की मिटाव आ गई । जो कभी नियम स्वभाव की अपूर्व बात को नहीं समझा और उसके किसी न किसी प्रकार से व्यवहार का रुचि रह गई है ।

प० चक्कन्ती जी समयप्राप्त म कहत हैं कि प्राणियों को भद्ररूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही विद्यमान है और उसका उपपन्न भी बहुधा सभी प्राणी परम्पर करत हैं, तथा त्रिनवायी म शुद्धनय का इत्ता वनम्बन समन कर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है किन्तु इसका पत्र समर ही है । शुद्धनय का पक्ष कभी नहीं आया और इसका उपपन्न भी विरल है—कचित् क्वचित् ह, "सतिग उपकारी श्रीगुरु न शुद्धनय के प्रदण का पत्र भोजन जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि—"शुद्धनय भूताप ई सत्याप है, इसका भाग्य लेने से सम्पत्ति हुमा जा सकता है । इसे जाने बिना जीव जगत्क व्यवहार में मग्न है सबक आत्मा क ज्ञान-भद्ररूप निश्चय सम्पत्त्व नही हो सकता " ।

आत्मा के निश्चय स्वभाव की बात करन पर व्यवहार गौण हो जाता है वहाँ यदि स्वभाव के काय क लिए वीच नकार करे और व्यवहार के लिए रुचि करे तो समझना चाहिए कि उस स्वभाव की रुचि नहीं है और स्वभाव की भोग की रुचि क बिना वीच स्वभाव में काम नहीं कर सकता अर्थात् उसकी व्यवहार की दृष्टा दूर नहीं होती ।

यह निश्चयनय व्यवहार का निषेध करता है यह बात जानियों न बारंबार कही है उसमें व्यवहार क स्वरूप का ज्ञान भी उसी क साथ आ जाता है । निश्चयनय जिस व्यवहार का निषेध करता है वह व्यवहार बौन सा है ? कुदेव आदि की मायतात्मक जो ज्ञान है सो निश्चयानु पोषक है उसका तो निषेध ही है क्योंकि उसमें व्यवहारत्व भी नहीं है । कुदेव आदि की मायता को छो कर सधे देव, गुरु शास्त्रों में जो बधा है उसके ज्ञान को व्यवहार कहा गया है और वह ज्ञान भी निश्चय सम्पत्त्व का मूलकारण नहीं है इसलिये निश्चय स्वभाव क बल से उस व्यवहार का निषेध किया गया है । यहाँ पर गृहीतमिथ्यात्व की तो बात ही नहीं है किन्तु यहाँ पर गृहीत सुख मिथ्यात्वदशा में जो व्यवहार है उसका निषेध है । जो सधे देव, शास्त्र गुरु के अनिरिक्त भाग्य किसी कुदेव आदि को सत्यापेक्ष में

ज्ञान है व, ज्ञान तो व्यवहार में भी बहुत दूर है। जिन निमित्तों की ओर से शक्ति को उठाकर स्वभाव में डलना होना है वे निमित्त क्या हैं, एक विषय विरक्त नहीं है, उसे स्वभाव का विवेक तो हो ही नहीं सकता। और यह भी नियम नहीं है कि जो सच्च निमित्तों की ओर मुड़ना है उसे स्वभाव का विवेक होता ही है। किन्तु ऐसा नियम है कि जो निरवयव स्वभाव का भावप्रय लता है उसे सम्बन्धरान् भवरय होना है, इमीनिय निरवयव से व्यवहारनय का निषेध है।

शास्त्र की ओर का, विकल्प से जो ज्ञान है सो व्यवहार है। उस ज्ञान की ओर से वीच को हटाकर उमे स्वभाव की ओर मोड़ा जाता है। सत् के निमित्त की ओर के भाव से जैसा पुण्य-यध होता है वैसा पुण्य ग्रन्थ निमित्तों क मुद्रा से नहीं बघता, अर्थात् लोकोत्तर पुण्य भी सधे देव, गुरु शास्त्र के निरवय से होता है। किन्तु वह ज्ञान अभी पर की ओर उन्मुख है, निरवय स्वभाव की ओर उन्मुख नहीं है, इसलिये उसका निषेध है। जैसे पागल मनुष्य का ज्ञान निर्णयहीन होता है इसलिये उसका माता को माता के हाथ में जानने का जा ज्ञान है वह भी अयथार्थ है, इसीप्रकार अज्ञानी का स्वभाव की ओर का निरवयवहित ज्ञान दोषित हुए बिना नहीं रह सकता।

सर्वत्र भगवान् क कथन की ओर जो मुकाव है वह भी व्यवहार की ओर का मुकाव है। वीनराग शासन में कथित जीवादि नवतत्त्वों की विकल्प से जो सभी श्रद्धा है सो पुण्य का कारण है क्योंकि उसमें भेद का और पर का लक्ष है। परलक्ष धर्म का कारण नहीं है। जो जीव निमित्त से प्रविष्ट है किन्तु निमित्त की ओर से चलकर अभी स्वभाव का ओर नहीं मुका उसे निरवय सम्बन्धरान् नहीं है।

मात्वाचार्य इत्यादि सधे शास्त्र जीवाजीवादिक नवतत्त्वों का स्वरूप और एकभिन्न्यादिक छह जीवनिश्चयों वा प्रतिपादन वीनराग जिनशासन के अतिरिक्त ग्रन्थ किमी में तो है ही नहीं परन्तु वीनराग जिनशासन में कइ अनुसार शास्त्रों का सच्चा ज्ञान करे जीवादिक नवतत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा पर और छह जीवनिश्चयों को मानकर उनकी दया पावन करे सो वह भी पुण्य का कारण

ई : और उसे व्यवहार दान, ज्ञान धारित्र (जो जीव निरवय सम्यग्दर्शन प्रगट करेगा उसके लिए) कहा जाता है किन्तु परमाणुष्टि उसे दान ज्ञान धारित्र क रूप में स्वीकार नहीं करती क्योंकि जिनतासन क व्यवहार तक माना गो धम नहीं है किन्तु यदि निरवय भाग्यभाव की ओर ठुकर सम व्यवहार का निपथ कर ता वह धर्म है । इसप्रकार निरचयनय व्यवहार का निपथ करता है ।

इस व्याख्यान में यह बताया है कि ज्ञानी का व्यवहार की सुप्त पदम कौं रू जाती है तथा निरचयनय का भाग्य कैम होना है । अर्थात् निष्ठाष्टि जीनों की निष्ठाष्टि कौं रू रू जाता है तथा सम्यग्दर्शन कैस प्रगट होना है यह बताया है ।

इस विषय स सम्बन्धित कयन मोलमार्गे प्रकाशक में भी भाषा है वह इस प्रकार है - सत्य का जानता है तथापि उसके द्वारा अपना अदमार्गे प्रयाजन ही निद्र करता है इसलिये वह सम्यग्दर्शन नहीं कहलाता ।

ज्ञान क क्षोभप्राम में निरवय-व्यवहार लेनों का ध्यान होना है, तथापि अवन बन को निरचय की ओर हाजन धारिये उमकी जगह व्यवहार की ओर ढालता है इसलिये व्यवहार का पक्ष रू जाता है ।

अज्ञानी व्यवहार-व्यवहार करता है और ज्ञानी निरवय क भाग्य से व्यवहार का निपथ ही निपथ करता है ।

श्री ममयमारपी में कहा है कि - जिसे ऐसा भाग्य ज्ञान हो गया है कि उसके द्वारा समस्त पदार्थों को हस्तात्मनश्चरु जानता है और यह भी जानता है कि इसका जानन बाला में है परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ इस प्रकार अपने को परमेश से भिन्न करन चतुद्रव्य अनुभव नहीं करता ” अर्थात् स्व-परमो जानना हुआ भी अवन निरचय स्वभाव की ओर नहीं धुटना किन्तु व्यवहार की पक्ष में झटक जाता है इसलिये वह कार्यकारी नहीं है क्योंकि वह निरचय का भाग्य नहीं लता ।



श्रुतपंचमी ।

ज्ञानस्वभावो ब्रह्मा है, वह ज्ञान अभी भी इंद्रियों के ध्रुवतबन से जानता है या इंद्रियों के बिना ही ? यदि वर्तमान ज्ञान इन्द्रिय से जानता है तो सामान्य ज्ञानस्वभाव के वर्तमान विरोध का अभाव होगा । यदि ज्ञान इन्द्रिय से जानता हो तो उस समय जो सामान्य ज्ञान है उसका विरोध क्या होगा ? ब्रह्मा का ज्ञान इन्द्रिय से नहीं किन्तु सामान्य ज्ञान की विरोध अवस्था से जानता है । यदि वर्तमान में जीव विरोध ज्ञान से नहीं जानता हो और इन्द्रिय से जानता हो तो विरोध ज्ञान ने कौनसा कार्य किया ? ब्रह्मा इन्द्रिय से ज्ञान का कार्य क्यों ही नहीं है । ज्ञान स्वयमेव विरोधरूप जानने का कार्य करता है । निमित्त में भी ज्ञान इन्द्रिय और ज्ञान एकत्रित होकर जानने का कार्य नहीं करत, परन्तु सामान्य ज्ञान जो ब्रह्मा का विकल स्वभाव है उसीका विरोध ज्ञान वर्तमान जानने का कार्य करता है ।

प्रश्न—यदि ज्ञान का विरोध ही जानने का कार्य करता है तो फिर बिना इन्द्रिय के जानने का कार्य क्यों नहीं होता ?

उत्तर—ज्ञान की उमप्रकार की विरोधता का साम्यता नहीं होती तब इन्द्रिय नहीं जानती । और जब इन्द्रिय होता है तब ज्ञान जानने का कार्य तो ज्ञान भाव ही करता है, क्योंकि ज्ञान परावलम्बन रहित है । मोक्षमाय प्रकाशक पृष्ठ २६४ में कहा है कि ' निमित्त—निमित्तिक अवध का ज्ञान करना चाहिये, ' यह उसी का विवरण चल रहा है । इन्द्रिय के हात हुये भी ज्ञान स्वतन्त्र स भवनी, अवस्था से जानता है । यदि यह माना जायगा कि

ज्ञान इन्द्रिय से जानता है तो इमका अर्थ यह होगा कि ज्ञान का विरोध स्वभाव काम नहीं करना। और एसा ज्ञान पर बिना विरोध के सामान्य ज्ञान का ही अभाव हो जायगा। इसलिये यह विद्वद् हुमा कि ज्ञान इन्द्रिय से नहीं जानता। अल्पज्ञान जब अवन द्वारा जानता है तब अनुसूत्र शिष्टियाँ उपस्थित होती हैं किन्तु ज्ञान उनही सहायता से नहीं जानता। इसप्रकार ज्ञान लना ही निमित्त—निमित्तक मरध का ज्ञान है। किन्तु यदि यह माना जायगा कि ज्ञान इन्द्रिय से जानता है तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान होगा। क्योंकि इस मायता में निमित्त और उपादान एक हो जाता है।

भाचार्यद्वय शिष्य से पूछते हैं कि यदि जीव ने इन्द्रिय द्वारा ज्ञान प्राप्त किया तो सामान्य ज्ञान ने कौनसा कार्य किया? उस समय ता उसका अभाव ही मानना होगा न?

जि व ने उतर दन हुए कहा कि मज ही ज्ञान—विरोध नहीं हो ता भी ज्ञान सामान्य तो विकृत में रहगा ही? और जानन का काम इन्द्रिय से होगा। एसा होने से ज्ञान का नाश नहीं होगा—अभाव नहीं होगा।

भाचार्यद्वय का उत्तर—निविरत्य सामान्य ता 'समग्राणु क सीध' जैसा (अभावस्वरूप) है। बिना विरोध के सामान्य हा ही नहीं सकता। इस लिये निर्विशेष सामान्यज्ञान मानने से सामान्य का नाश या अभाव ही चायगा इमलिये यदि यह माना जाय कि विरोध ज्ञान से हा अवनलक्षण कार्य होता है तो ही सामान्य ज्ञान का अस्तित्व रह सकता है।

ज्ञानस्वभाव राग और निमित्त के अवलक्षण से रक्षित है, और विशय ज्ञान सामान्यज्ञान में से ही आता है एसा जानकर उसही अज्ञान—ज्ञान और अविश्रुता करना यही धर्म है।

यदि ज्ञान इन्द्रिय से जानता है ता फिर उसका वनमान कार्य कहा गया? यदि इन्द्रिय की उपस्थिति में ज्ञान इन्द्रिय के कारण जानता है ता उस समय साना य ज्ञान विशेष पर्यायरहित कहाया किन्तु बिना विरोध के सामान्य ता होगा नहीं है। जहां सामान्य होगा वहा उसका निरोध होगा ही

एक प्रश्न यह होना है कि वह विशेष सामान्यज्ञान से होता है या निमित्त के विस्तारान्तर निमित्त को लेकर तो हुआ नहीं है, किन्तु सामान्य स्वभाव के द्वारा है। विशेष का कारण सामान्य है, निमित्त उसका कारण नहीं है। यदि यह अज्ञान या पूर्णतः निमित्त का कार्य माना जाय तो निमित्त जो परद्रव्य है वह परद्रव्यरूप ज्ञान हो जायगा। आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्थिर है, यह सामान्य और वर्तमान कार्यरूप ज्ञान का विशेष है। सामान्यज्ञान का विशेष स्थिर ज्ञानस्वभाव का परिष्कृत या ज्ञान की वर्तमान दशा (पञ्चाय) कुछ भी नहीं, वह सब एक ही है।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, वह केवल जानने का ही काम करता है। शब्द को, रूप को या किसी को भी जानने के लिये ज्ञान एक ही है, ज्ञान में कोई अन्तर नहीं हो जाता। आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्वयमेव है वह किसी क निमित्त से नहीं है। आत्मा का जो त्रैकालिक ज्ञानस्वभाव है वह अपने आप ही विशेषरूप काय करता है। आत्मा इन्द्रिय से जानता ही नहीं, वह ज्ञान की विशेष अवस्था से ही जानता है। सामान्यज्ञान स्वयं परिष्कृत करके विशेषरूप होता है, वह विशेषरूप जानने का कार्य करता है। यह मानना प्रथम है कि ज्ञान दूसरे के अवलम्बन से जानता है। ज्ञान स्वावलम्बन से जानता है इस प्रकार की भ्रष्टा-ज्ञान और स्थिरता धर्म है।

यहां, परावलम्बन रहित ज्ञान की स्वाधीनता बताई गई है। यह अयधरला शब्द की विशेषता है। और भी अनेक बातें हैं जिसमें से यह एक विशेष है।

मेरे ज्ञान का परिष्काररूप वर्तन उसका वर्तनरूप विशेष व्यापार (उपयोग) मेरे द्वारा होता है उसे किसी दूसरे निमित्त की या परद्रव्य की आवश्यकता नहीं है अर्थात् ज्ञान कभी भी स्वाधीनता से हटकर परावलम्बन में नहीं जाता। इसलिये वह ज्ञान स्वयं समाधान और सुखस्वरूप है। ज्ञान का स्वाधीन स्वभाव होने से ही निगोद से लेकर सिद्ध जीवों तक सबको ज्ञान होता है परन्तु तथा ही रक्षा दे देना अज्ञानी नहीं मानता, इसलिये उसकी मान्यता में विशेष आता है।

सभी चीजों का सामान्य ज्ञानस्वभाव है उस ज्ञान का विशेष कार्य प्रपञ्च सामान्य स्वभाव के अर्थत्वम्बन से ही होता है । इसलिये राग या पर क्रिया के अर्थत्वम्बन के बिना ही ज्ञान कार्य करता है । अतः ज्ञान राग या संयोग से रहित है ।

आज (ध्रुवचमी) सु २० ० पर पद्म सातवें-वें गुणस्थान में भूनेत्रे हुए महान् सन मुनियों न-याचार्य पुण्डरीक और भूनेत्रि ने (ज्ञान प्रमथना का विद्वत् छठवें ही) महान् परमागम शास्त्रों (षष्ठ गुणज्ञान) की रचना करके अक्षयेश्वर में उत्पादपूर्वक ध्रुवपूजा की थी । उस ध्रुवपूजा का मगधिक दिन ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी है ।

मेरा ज्ञानस्वभाव राग स्थिर रह मेरे ज्ञान की अदृष्ट धारा बहती रह अथवा कवनज्ञान उत्पन्न हो इसप्रकार वास्तव में अंतरय में पूंजता की भावना उत्पन्न होने पर उन्हें बाहर ऐसा विद्वत्पण्य उठा कि ध्रुवज्ञान-आगम स्थिर बना रह यह विद्वत्पण्य उठते ही महान् परमागम शास्त्रों की रचना की और उनही ध्रुवपूजा की षष्ठी मंगल दिन आज (ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी) है । वास्तव में दूसरे के लिये भावना नहीं है किन्तु अपने ज्ञान की अदृष्ट धारा बहने की भावना है । और तब इन शास्त्रों की रचना हुई है । इस शास्त्रों में अनेक बातें हैं उनमें से आज्ञा-गुण्य का विराय करने बहना है ।

ज्ञान इन्द्रिय से नहीं जानता । यदि ज्ञान बिना काय अर्थात् विरोध के 'बिना' रहे तो वर्तमान विराय के बिना सामान्य विरोध जानना ? यदि विराय न हो तो 'सामान्यज्ञान ही क्यों रहा ? यदि वर्तमान पर्यायरूप विराय को नहीं मानें तो 'सामान्य ज्ञान है' इसका बिना विरोध के निगम बौध करण ? निगम तो विरोध ज्ञान करता है । वर्तमान विरायज्ञान (पर्याय) के द्वारा परावर्तनम्बन रहित सामान्य ज्ञान स्वभाव जसा है वसा ही जानना इसीमें धर्म का समावसा हो जाता है ।

ज्ञान राग की जानता है पर को जानता है इन्द्रिय को जानता है परन्तु वह किसी का अपना नहीं मानता, ज्ञान का ऐसा स्वभाव है । जो विचार को अपना

परशु अपना नहीं - मनाता, उस दुःख नहीं होता -। मेरे ज्ञान को कोई परावलम्बन नहीं है, ऐसे स्वाधीन स्वभाव, नी धृष्टा-ज्ञान और स्थिरता करे तो उस स्वभाव में शका या दुःख हो ही नहीं सकता। इसका कारण यह है कि ज्ञानस्वभाव स्वयं सुखरूप है।

निगोद से लेकर समस्त जीवा में को भी जीव इन्द्रिय से नहीं जानता। जिसे सबसे अल्प ज्ञान है ऐसा निगोदिया नाव भी स्पर्शन इन्द्रिय से नहीं जानता किन्तु वह अपने सामान्य ज्ञान के परिणामन में हीन बाल विशेष ज्ञान के द्वारा जानता है। यह र्ण मानता है कि मुझ इन्द्रिय से ज्ञान हुआ है। परन्तु जब जीव को सामान्य ज्ञान स्वभाव के अवलम्बन से (सामान्य की ओर एकप्रता होन से) विशेष ज्ञान होता है तब वह सम्यक् मतिरूप होता है और उस मति की ज्ञानरूप र्ण में बिना परावलम्बन ज्ञानस्वभाव की पूर्णता की प्रत्यक्षता आती है।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव द्विती संयोग के कारण से नहीं है, यदि एम स्वाधीन ज्ञानस्वभाव को न जाने तो धर्म नहीं होता। धर्म कहीं बाह्य म नहीं है, ज्ञानानन्द स्वभाव ही धर्म है, इसमें तो समस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट है। यह बात भी इसमें आगई कि कोई किसी का पुत्र भी करने को ममत्वे नहीं है। जन्म-इन्द्रिय आत्मा क ज्ञान की व्यवस्था नहीं करती और आत्मा का ज्ञान पर का सुख नहीं करना इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की स्पष्टता सिद्ध होगई।

सभी सम्यक् मतिज्ञानियों का ज्ञान बिना निमित्त क अपलंबन सामान्य स्वभाव के अपलंबन से कार्य करता है, मलिके सर्व निमित्तों, क अभाव में- सपूणे असाहाय होकर सामान्य स्वभाव के अपलंबन से विरोधरूप जो केवल ज्ञान पूरा प्रत्यक्ष है उसका निणय वर्तमान मतिज्ञान के असाहाय से हो सकता है। यदि पूरा असाहाय ज्ञानस्वभाव मतिज्ञान के निणय में न आये तो वर्तमान विरोध अरूप ज्ञान (मतिज्ञान) पर के अपलंबन के बिना प्रत्यक्षरूप है यह भी न हो। सामान्य स्वभाव क आश्रय से जो

विरोधरूप मन्तिगान प्रगट हुमा इ उग मन्तिगान में कवलगान प्रत्यक्ष है । जो भंग प्रगट हुमा है वह भरी क आधार क बिना प्रगट नहीं हुमा इ इसलिये भरी के निर्णय क बिना भंग का निर्णय नहीं हाता ।

भंग ' उत पचना क तिन इम जदधवना में जो कवलगान का रहस्य भरा गथा है उमदी मुख्य दो विरोधताएँ हैं जिनही स्पष्टता प्रगट होती है— (१) भंगने ज्ञान की विरोधरूप अवस्था परावतवन क बिना स्वाधीन भाव से है (२) उस स्वाधीन भंग म समस्त कवलगान प्रत्यक्ष है यह दो मुख्य विरोधताएँ हैं ।

सामान्य स्वभाव की प्रतीति करता हुमा जो वतमन निर्मल स्वावलंबी ज्ञान प्रगट हुमा वह साधक है और यह पूर्ण साधक रूप केवलज्ञान को प्रत्यक्ष जानता हुमा प्रगट होता है । यह साधक ज्ञान स्वाधीनभाव से अपने कारण से भीतर के सामान्य ज्ञान की शक्ति क लक्ष्य से विरोध-विरोधरूप में परिष्मन करता हुमा साध्य कवलज्ञान के रूप में प्रगट होता है उसमें कोई बाधावतवन नहीं है किंतु सामान्य ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है ।

इसे जनना ही धर्म है । आत्मा का घम आत्मा क ही पास है । अज्ञानभाव से बचने के लिये शुभभाव होता है, उसे ज्ञान जानता है कि तु उसका अवलंबन ज्ञान नहीं मानता अर्थात् सर्व निमित्त क बिना पूर्ण स्वाधीन केवलज्ञान का निर्णय करता हुमा और प्रतीति में लता हुमा स्वाधित मति ज्ञान सामान्य स्वभाव क अवलंबन से प्रगट होता है इसप्रकार ज्ञान का कार्य परावतवन से नहीं हाता किन्तु स्वाधीन स्वभाव के अवलंबन से हाता है । इसमें ज्ञान की स्वतंत्रता बताई है ।

ज्ञान की भाँति श्रद्धा की स्वतंत्रता ।

आत्मा में श्रद्धायुग विकल है । सामान्य श्रद्धायुग का जो विरोध है तो सम्यग्दर्शन है । श्रद्धायुग का वर्तमान यदि एक शास्त्र गुरु इत्यादि पर के मान्य से परिष्मन कर तो उस समय श्रद्धायुग ने कौनसा विशेष कार्य

विशेष। ध्रुव सामान्य गुण है उगडा विशेष सामान्य के अवलम्बन से ही प्राप्त है। सम्यग्दर्शनरूप विशेष पर के अवलम्बन से काय नहीं करता, किन्तु वनाय ध्रुव क अवलम्बन से ही उसका विशेष प्रगट होना होता है। सम्यग्दर्शन उप ध्रुवगुण की विशेष दशा है। ध्रुव गुण है, और सम्यग्दर्शन पर फलित है। ध्रुव गुण के अवलम्बन से सम्यग्दर्शनरूप विशेष दशा प्रगट होती है। यदि दूर, शस्त्र, गुरु आदि पर के अवलम्बन से ध्रुव का विशेष प्रगट होता है तो सामान्य ध्रुव का उस समय विशेष क्या है? विशेष क विना सामान्य ध्रुव ही नहीं होना। आत्मा की ध्रुव की वर्तमान अवस्था कल्पन जा काय होता है यह वैकल्पिक ध्रुव के नाम क गुण का है यह काय क्रिया क पर के अवलम्बन से नहीं किन्तु सामान्य का विशेष प्रगट होता है। विशेष के विना सामान्य ध्रुव हो ही नहीं सकती।

आनन्दगुण की स्वाधीनता ।

ज्ञान-ध्रुव गुण के अनुसार आनन्दगुण क सम्बन्ध में भी यही बात है, वह आत्मा का वर्तमान आनन्द यदि पैसा इत्यादि पर क कारण से परिणत कर ता उस समय आनन्दगुण न स्वयं वर्तमान विशेष कौनसा काय क्रिया है। यदि पर स आनन्द प्रगट हुआ तो उस समय आनन्दगुण का विशेष कार्य क्या गया? अज्ञानी न पर स आनन्द माना, उस समय भी उसका आनन्दगुण स्वाधीनतापूर्वक कार्य करता है। अज्ञानी ने आनन्द का वर्तमान कार्य उल्टा माना अर्थात् आनन्दगुण का विशेष उस दुस्वरूप परिणमित होता है। आनन्द पर से प्रगट नहीं होता किन्तु संयोग और निमित्त क विना आनन्द नाम क सामान्य गुण के अवलम्बन से वर्तमान आनन्द प्रगट होता है, इसके समकाले पर लक्ष का भार पर क ऊपर न जाकर सामान्य स्वभाव पर जाता है और उस सामान्य क अवलम्बन से विशेषरूप आनन्द दशा प्रगट होती है। सामान्य आनन्द रसभाव क अवलम्बन से प्रगट हुआ आनन्द का अंग पूर्ण आनन्द की प्रतीति का लेकर प्रगट होता है। यदि आनन्द के अंग में पूर्ण की प्रतीति

अंग आया कहीं से ?

चारित्र्य वीर्य इत्यादि सत्र गुणांकी स्वाधीनता।

इतीप्रकार चारित्र्य वीर्य इत्यादि समस्त गुण का विशय काय सामान्य के भ्रमलम्बन से ही होता है। आत्मा का पुनर्वास यदि निमित्त के भ्रमलम्बन से कार्य करता है तो अन्तरण के सामान्य पुनराय स्वभाव न, क्या किया ? क्या सामान्य स्वभाव विरोध के बिना ही रहा ? विशय के बिना, सामान्य रहता हो तो तो बन नहीं सकता। प्रत्येक गुण का वर्तमान (विशय अवस्था-रूप काय) सामान्य स्वभाव के अन्तर्गत प्रकट होता है। कम पुन्याये रोक्षता है यह बात ही निश्चया होन से संबन्धित होगई। किसी भी गुण का कार्य यदि निमित्त के भ्रमलम्बन से भ्रमल, राग के भ्रमलम्बन से हाता होता तो उस समय सामान्य स्वभाव, का विशय काय न रह और यदि विशय न हो तो सामान्य गुण ही निश्च नहीं होते। सभी गुण विकाल है, उनका काय किसी निमित्त भ्रमल राग के भ्रमलम्बन से शानियों के नहीं होता, किन्तु अपने ही सामान्य के भ्रमलम्बन से होता है। यह स्वधीन स्वरूप जिसके जन्म गया उसे पूण की प्रतीतियुक्त गुण का अन्त प्रकट होता है। जिसके पूण की प्रतीति सन्त ज्ञान प्रकट होता है उस की अत्यन्त मर्म मुक्ति अन्तरण होजाती है। जिस सामान्य के अन्त से एक मर्म प्रकट हुआ सभी सामान्य के अन्त से पूणदशा प्रकट होनी है। विकल्प के कारण सामान्य विशय की अवस्था नहीं होनी। यदि विकल्प के कारण विशय होता है तो विकल्प का अभाव होने पर विशय का भी अभाव हो जाय। कर्मान्त विशय सामान्य से ही प्रकट होता है विकल्प से नहीं इसे समझना ही धर्म है। प्रत्येक द्रव्य की स्वाधीनता की यह स्पष्ट बात है दो और दो चार जैंगी मीठी मरल बात है उसे न समझकर उसकी जगह यदि जीव इसप्रकार पराधरता माने कि सब कुछ निमित्त से होता है और एक दूसरे का करता है तो यह सब निश्चया है यह उसकी मूलभूत है। यदि पहल ही दो और दो तीन मनन की मूल होगई हो तो उसके बाद की भी सही भूत होती जायगी। इतीप्रकार वस्तुस्वभाव की मायता में जिसकी भूत हो उसका सब निश्चया है।

वर्तमाना से प्रगट हुआ अश पूर्ण को प्रत्यक्ष करता है।

प्रत्यक्ष जगत में मल हों, पर निमित्त भये हा, जगत म सर्व वस्तुओं के सम्बन्ध है किन्तु वह कोई वस्तु मेरी विशेष समस्या करने के लिये रूप नहीं है, नरे आत्मा के सामान्य स्वभाव का अवलम्बन करके मेरी विशेष समस्या ही है—वह स्वाधीन है। और यह स्वाधीनता से प्रगट होने वाला ही पूर्ण विशेषरूप के लक्षण का कारण है। जो विशेष प्रगट होता है वह पूर्ण को प्रत्यक्ष करता हुआ प्रगट होता है।

प्रश्न—वर्तमान अश पूर्ण-प्रत्यक्ष कैसे होता है ?

उत्तर—जहाँ विशेष को पर का अवलम्बन नहीं रहता और मात्र सामान्य का अवलम्बन रहता है वहाँ प्रत्यक्ष होता है, यदि निमित्त की वस्तु को तो जगत् में आगा, किन्तु जहाँ निमित्त अथवा विकपरहित मात्र सामान्य स्वभाव का अवलम्बन है वहाँ विशेष प्रत्यक्ष ही होता है, अश में पूर्ण-प्रत्यक्ष ही होता है। यदि अश में पूर्ण-प्रत्यक्ष न हो तो अश ही सिद्ध न हो। 'यह अश है' यह अभी निश्चय हो सकता है जब अश प्रगट हो। यदि अश अश पूर्ण प्रत्यक्ष न हो तो अश भी सिद्ध न हो।

मतिज्ञान और अज्ञान भी वास्तव में लोसमाय के अवलम्बन से होने के कारण प्रगट हैं। मतिज्ञान और अज्ञान को जो पयोग कहा है तो वह लो 'पर को बनते मन प्र इन्द्रिय का निमित्त है' इसप्रकार निमित्त-निमित्त अर्थ का अज्ञान अज्ञान के लिये वह कथन किया है किन्तु एव को जानने पर लो यह अज्ञान भी प्रत्यक्ष ही है।

व्यवस्थापन रदित सामान्य के अवलम्बन से मति प्रिये अज्ञान ही है, इसप्रकार अज्ञान सामान्य स्वभाव को प्रगटि जन लई अथवा विशेष अज्ञान अज्ञान को जानते अज्ञान भी स्व के अवलम्बन म अज्ञान बनता है इसप्रकार वास्तव में लो यह ही प्रत्यक्ष ही है। अज्ञान के निमित्त-निमित्त अर्थ-स्वभाव प्रगटि है अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान ही है।

अवलंबन वाला ज्ञान स्वाधीन स्वभाव वाला है। मतिज्ञान और केवलज्ञान के बीच के भेद को वह नहीं गिनता, जिसके यह बात जम जाती है उसे केवलज्ञान के बीच कोई विघ्न नहीं आ सकता यह तीर्थंकर कवनज्ञानी की बाणी केवलज्ञान का घोष करती आई है। आचार्यदेवों के केवलज्ञान का ही घोष हो रहा है। बीच में भव प्रदय होता है और केवलज्ञान में बाधा आती है यह बात यहाँ विलुप्त गौण कर दी गई है। यहाँ तो सामान्य स्वभाव के लक्ष्य में जो भ्रम प्रगट हुआ है उस भ्रम के साथ ही केवलज्ञान अभेद है इस प्रकार केवलज्ञान की बात की गई है। केवलज्ञानियों की बाणी केवलज्ञान का घोष करती हुई आई है और केवलज्ञान के उत्तराधिकारी आचार्यों ने यह बात परागम शास्त्रों में समझ की है। तु भी केवलज्ञान को प्राप्त करने की तैयारी में है तु अपने स्वभाव के बलपर ही रह। अपने स्वभाव की प्रतीति के बिना पूर्ण-प्रत्यक्ष का विश्वास जायत नहीं होता।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव स्वाधीन है, कभी भी बिना विरोध के ज्ञान नहीं होता। जिस समय विरोध में थोड़ा ज्ञान या वह अपने से ही या और ओ विरोध में पूरा होता है वह भी अपने से ही होता है, उसमें किसी पर का कारण नहीं है। इसप्रकार जीव यदि ज्ञानस्वभाव की स्वाधीनता को जान लेता है वह पर में न देखकर अपने में ही लक्ष्य परके पूर्ण का पुरुषार्थ करने लग।

सामान्य किसी भी समय निर्विशेष नहीं होता, प्रत्येक समय सामान्य का विरोध कार्य तो होता ही है। चाहे जितना छोटा कार्य हो तो भी वह सामान्य के परिणाम से होता है। निगोद से लेकर केवलज्ञान तक आत्मा की सब परिणति अपने से ही है, इसप्रकार जहाँ स्वतंत्रता की ध्वनि अपनी प्रतीति में आती है वहीं परावलंबन दूर हो जाता है। मेरी परिणति मुझसे ही कार्य कर रही है, इसप्रकार की प्रतीति में भावदण और निमित्त के अवलंबन का घूरा हो है।

आत्मा के अलगगुण स्वाधीनता कार्य करता है। कर्ता, भोक्ता, प्राद
 कता स्वामित्व इत्यादि अंगगुणों की अपमान परिधि निमित्त और विद्वत्
 क भाव्य क विना अथवा भाव ही प्रगट होती है। जो यह मानता है वह
 जीव को गुण क अलगवदन सं प्रगट हुआ अथ पूणता का प्रत्यक्ष करनेवाण
 भा क साथ ही-पूर्ण को अभिन्न मानता है एवं अन्न और पूणता के बीच क
 भेद या दर कर देता है, इत्यर्थ जो मात्र प्रगट होता है वह भाव यथाप
 और अग्रनिहत भाव है।

इस बात से इकार करने वाला कौन है? यदि कौं इकार कर ता
 वह अपना इकार कर सकता है। इस बात से इकार करने वाला
 कोई है ही नहीं। निर्णय एव मुनि ऐसे अग्रनिहत भाव से उत्पन्न होवे हैं कि
 जिससे ज्ञान की धारा में भग बड़े विना निर्दिष्टनया कवलज्ञानरूप हो जात
 है। निर्णय आचार्यों ने इस दिन (भूतपंचमी) को बड़े ही उत्सवपूर्वक
 मनाया था।

मेरे ज्ञान के मति धुत क अन्न स्वप्न हैं उन्हें किसी पर का अलगवदन
 नहीं है ऐसी प्रतीति ज्ञान पर किसी निमित्त का अथवा पर का लक्ष नहीं
 रहता। सामान्य स्वभाव की ओर ही लक्ष रहता है। इस सामान्य स्वभाव
 क मन से जीव को पूणता का पुण्यार्थ करना होता है। पहले पर के निमित्त
 से ज्ञान का ज्ञान माना या तब वह ज्ञान पर लक्ष में अटक जाता या किन्तु
 स्वाधीन स्वभाव से ज्ञान होता है एया प्रतीति ज्ञान पर ज्ञान को कहीं भी
 प्रतिरोध नहीं रहता।

मेरे ज्ञान में पर का अलगवदन अथवा निमित्त नहीं है अथात् कवलज्ञान
 वर्तमान प्रत्यक्ष ही है। इस प्रकार सामान्य स्वभाव क कारण मे ओ ज्ञान
 परिणमित होता है उम ज्ञानघारा को तोड़ने वाला कोई है ही नहीं। अथात्
 स्वाध्याय जो ज्ञान प्रगट हुआ है वह अलगवदन की ही पुकार करता हुआ
 प्रगट हुआ है। वह ज्ञान अल्पज्ञान ही में केवलज्ञान का अवरय प्राप्त करेगा।
 ज्ञान के अलगवदन से ज्ञान कार्य करता है एगी प्रतीति में समस्त केवलज्ञान
 समा जाता है।

पहन ज्ञान की भवस्या मरप थी, परचात् जब वाणी सुनी तत्र ज्ञान बढ़ा
 भिन्तु वह वाणी क मनन से बढ़ा दे यह बात नहीं है लेकिन जहा ज्ञान की
 भवस्या बढ़ी बढ़ा सामान्य स्वभावी ज्ञान ही भवपन पुण्याय से कपाय भो कम
 करके विशेषरूप में हुआ है अथात् भवपने कारण से ही ज्ञान हुआ है, ऐसी
 प्रतीति होने पर स्वतंत्र ज्ञानस्वभाव क बन मे पूजमान का पुण्याय करना
 चाहिए। ज्ञानियों को स्वतंत्र ज्ञानस्वभाव की प्रतीति क बल से घतमान हीनदशा
 में भी कवलज्ञान प्रत्यक्ष है, केवलज्ञान प्रतीति म भागया है। भवानी के
 स्वतंत्र ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं होनी, इसलिये उमे यह ज्ञान नहीं होता
 कि पूरी भवस्या बेसी होती है तथा उसे पूर्णशक्ति की भी प्रतीति नहीं होती।

भेदके प्रकार के निमित्त बदलते जाते हैं और उसमें निमित्त का भवलेखन
 भोगा है इमलिये उसके निमित्त का लक्ष्य बना रहता है तथा स्वतंत्र ज्ञान
 की प्रत्यक्षता की भदा उसके नहीं जंमनी। 'मेरा घतमान ज्ञान मुझसे
 हाता है, मेरी शक्ति पूर्ण है और इस पूर्णशक्ति क माध्य से पुण्याय क
 द्वारा पूर्णज्ञान प्रगट होता है,' ज्ञानी को इमप्रकार की प्रतीति है। जिस ज्ञान
 के भव से ज्ञानस्वभाव की प्रतीति की यह ज्ञान कवलज्ञान को प्रत्यक्ष करता
 हुआ ही प्रगट हुआ है अर्थात् बीच में जो शेष है, भेद पचा हुआ है वह दूर
 होकर ज्ञान पूर्ण ही होता है। इसप्रकार सामान्य ज्ञानस्वभाव की प्रतीति
 करन पर पूरा में लक्ष्य लेता हुआ जा विशेष ज्ञान प्रगट हुआ है वह बीच क
 भेद का (मति और कवलज्ञान के बीच के भेद को) उठाता हुआ पूर्ण क
 माय ही भवेद भाव को करता हुआ प्रगट हुआ है। बीच में एक भी भव
 नहीं है। भवनाम भी किमके है घतमान में कवलज्ञान प्रत्यक्ष है उस बल
 पर बीच में जा एकध भव है उससे भाषाय न इन्कार किया है। भाचार्य
 देख न, मशुद्धता कवलज्ञान की ही बात कही है। यह बात जिसक जम
 जाती है उसे भव कदापि नहीं हाता।



द्रव्यदृष्टि

प्रत्येक द्रव्य प्रथम प्रकार है एक द्रव्य का दूसरे के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है " इस प्रकार जो यथार्थतया जानता है उसका द्रव्य ही होती है और द्रव्यदृष्टि के होने पर सम्यक्दर्शन होता है, निराम्यक्दर्शन होता है उसे मोक्ष हुए बिना नहीं रहता इसलिये सर्वप्रथम वस्तु का स्वस्व जानना आवश्यक है ।

प्रत्येक द्रव्यकृ-पृथक् है एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं क सकता ऐसा मानन पर वस्तुस्वभाव का हमप्रकार ज्ञान हो जाता नि-
 भात्मता सब पद्यों से भिन्न है तथा प्रत्येक पुटलपरमाणु भिन्न है व परमाणु मिलकर एकरूप होकर कभी कार्य नहीं करते किन्तु प्रत्येक परमाणु भिन्न ही है ।

जीव के विकारभाव होने में निमित्तस्वरूप विकारी परमाणु (इन्द्रिय) हो सकते हैं किन्तु द्रव्य की अपेक्षा से वेस्वभ पर प्रत्येक परमाणु प्रयत्न ही है, - दो परमाणु कभी भी नहीं मिलते और एक पृथक् परमाणु कभी भी विकार का निमित्त नहीं हो सकता अतएव प्रत्येक द्रव्य भिन्न है एही स्वभाव दृष्टि से कोई भी द्रव्य के विकार का निमित्त भी नहीं है । इसप्रकार द्रव्य ही ने किसी द्रव्य में विकार है ही नहीं जीवद्रव्य में भी द्रव्यदृष्टि से विकार नहीं है ।

पयाय दृष्टि से जीव की अवस्था में रागद्वेष होता है और उसमें कर्म निमित्त का है किन्तु पयाय को लक्षण कृष्ण द्रव्यदृष्टि ने मेरा कर्म तो कर्म

कोई बन्धु ही नहीं रहा, क्योंकि—वह तो—मन्थ है, और उसके प्रत्येक परमाणु पृथक्-पृथक् कार्य करते हैं इसलिये जीव के विकार का निमित्त कोई द्रव्य न रहा, अर्थात् अपनी ओर से लिया जाये तो जीवद्रव्य में विकार ही नहीं रहा । इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य भिन्न है एसी दृष्टि अर्थात् द्रव्यदृष्टि के होने पर राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण ही न रहा, अर्थात् द्रव्यदृष्टि में दोतरागभाव की ही उत्पत्ति रही ।

अस्वभावदृष्टि से—पर्यायदृष्टि से अथवा दो द्रव्यों के सयोगी कार्य की दृष्टि में राग-द्वेषादिभाव होते हैं । ' कर्म ' अनन्त पुद्गलों का संयोग है, उस संयोग पर या सयोगी भाव पर लक्ष दिया कि राग-द्वेष होता है किन्तु यदि एसी दृष्टि करे (वास्तव में अपन असयोगी आत्मस्वभाव ही दृष्टि करे) कि असंयोग अर्थात् प्रत्येक परमाणु भिन्न भिन्न है तो राग-द्वेष न हो, किन्तु उस दृष्टि क बन से मोक्ष ही हो । इसलिये द्रव्यदृष्टि का अन्त्यास परम कर्तव्य है ।



‘आभार’ प्रदर्शन

बलुचिदानसार् की छिदी तथा गुजराती आशुतिया की पांच-
पांच हजार प्रतिर्यो निर्माण करने के लिये निर्मलित्व भाई बहिना
ने जो आर्थिक भयार्थना प्रदान की है, तर्था आमार

- | | |
|---|------------|
| १०००] श्री वीरजीभाई वनील जामनगर के पुत्रों की ओर से
उनकी बहिन मणीभाई तथा रामभाई के स्मरणार्थ | राजकोट |
| १०००] श्री धालिदाम राधवजी लभारणी, | कर्ध |
| १०००] श्री सार्धार्यो निर्मातो श्री रतन बहिन, | जामनगर |
| ३००] श्री गलालचन्द्र जैठाभाई पारम्ब, | सोनगड |
| १२५] श्री हरगोवन देवचन्द्र मोदी, | जामनगर |
| १०१] सेठ चुनीलाल हठीमग, | राजकोट |
| १०१] श्री नर्मदा बहिन रणराडदास, | राजकोट |
| १०१] श्री कुसुम बहिन बहचरदास, | राजकोट |
| १०१] श्री छोटालाल नारणदास | नागनेशवाला |
| १०१] श्री छगनलाल लुभाई चेलायाला, | जामनगर |
| ३६३०] कुल | |



